चतुर्थ अध्याय

गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों में राजनीतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार का उद्घाटन

4.1 राजनीतिक व्यंग्यों में भ्रष्टाचार का उद्घान

गोपाल चतुर्वेदी वर्तमान समय में व्यंग्य लेखन के प्रतिष्ठित हस्ताक्षर हैं जिन्होंने व्यंग्य विधा को आगे बढ़ाने में बहुमूल्य योगदान दिया है। इनका साहित्य सामाजिक विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को देख पाने की इनकी तीव्र दृष्टि का परिचायक है। इन्होंने जीवन के विभिन्न पहलुओं को अलग- अलग ढंग से देखा, क्योंकि शिक्षा पूरी करने के बाद ये प्रशासनिक अधिकारी के रूप में अलग-अलग विभागों में कार्यरत रहे हैं। अतः इन्होंने शासन और प्रशासन में हो रहे क्रिया कलापों को सूक्ष्म दृष्टि से देखा और परखा है तथा बड़ी ही बेबाकी के साथ इन क्षेत्रों में हो रहे भ्रष्टाचार को उद्घाटित कर जनता तक पहुँचाने का प्रयास किया है। गोपाल जी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए वर्षों तक स्तम्भ लेखन करते रहे। आज एक व्यंग्यकार के रूप में गोपाल चतुर्वेदी अपनी प्रतिभा के साथ मजबूती से खड़े नज़र आते हैं। हिंदी जगत् में इनके व्यंग्य लेखन के विश्लेषण के पूर्व तत्कालीन व्यंग्य का परिवेश एवं उसकी प्रेरक परिस्थितियों की चर्चा उल्लेखनीय हो जाती है।

स्वतंत्रता पूर्व काल में ब्रिटिश राज होने के कारण अनेक प्रकार के बंधन, अन्याय, अत्याचार, व्याभिचार तथा आंतक हुआ करते थे, लेकिन स्वातन्त्र्योत्तर काल में राजनीतिक परिस्थिति बदलने से समाज के सभी अंगों में परिवर्तन होने की अपेक्षा की गयी थी। जनता की इच्छाओं और आकांक्षाओं को सम्मान देने के ख्याल से शासन व्यवस्था के लिए लोकतांत्रिक प्रणाली को चुना गया। भारत के संविधान में यह घोषित किया गया कि भारत एक लोकतंत्र होगा जिसमें जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए

शासन होगा। जनता द्वारा सरकार चुनी जाएगी। इसी भावना से भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा एवं अवसर की समता के मूलभूत अधिकार प्रदान करने के साथ व्यक्ति की गरिमा एवं राष्ट्र की एकता और अखण्डता को सुनिश्चित करने वाली बंधुता को बढ़ाने के क्रम में धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की संकल्पना को लेकर संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित एवं आत्मर्पित किया गया।

इस तरह संवैधानिक व्यवस्था के अनुरूप देश में लोकतंत्र की स्थापना के साथ जनता को शासन चलाने की अंतिम शक्ति दे दी गयी लेकिन जनता इसके लिए मानसिक एवं बौद्धिक रूप से तैयार न थी और न ही उसे अपनी शक्तियों से अवगत कराने के ठोस प्रयास ही किए गये। भोली एवं राजनीतिक समझ से शून्य जनता ऐसे लोगों को चुनकर संसद में भेजती रही जिन्हें जनता से कोई वास्तविक सरोकार नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि जनता एवं जन प्रतिनिधियों के बीच की खाई निरंतर बढ़ती गयी। जनता के प्रतिनिधि जनता के हितों की रखवाली करने के स्थान पर अपने स्वार्थ की राजनीति करने में उलझ गए। संसद भवनों में निरर्थक और बेमानी मुद्दों पर बहस होने लगी और जनहित के मामलों को सप्रयोजन दबाया जाने लगा। इस रूप में अधिकांश जनता का अशिक्षित एवं राजनीतिक चेतना ने शून्य होना ही भारतीय लोकतंत्र के लिए ठीक नहीं रहा। भारतीय राजनीति पैसे की गुलाम होकर रह गयी।

भारतीय संसदीय प्रणाली में अनेक कानून बनाए गए लेकिन किसी भी अभिकल्पना का निर्वाह उचित रूप से न होने के कारण व्यंग्य विधा के लिए वातावरण निर्मित हो गया। भारतीय संविधान द्वारा बनाए गए कानून खोखले साबित हो गए। दिन दहाड़े डाका डालना, अत्याचार करना, खून करना आम बात हो गयी। न्यायालय की नीति के अनुसार सौ में से निनानवे गुनाहगार मुक्त हुए, तो भी कोई बात नहीं लेकिन एक भी निरपराध व्यक्ति को सजा न हो। इस वस्तुस्थिति का अनुचित लाभ लेते हुए अनेक दोषी लोग बेदाग, बिना सजा समाज में स्वतंत्र विचरने एवं समाज के ताज बन कर रहने लगे और ऐसे दोषी

लोगों को न समाज, न पुलिस और न ही न्यायालय का डर रहा। ऐसे लोगों का पर्दाफाश एवं सुधार हेतु साहित्य में व्यंग्य विधा के लिए प्रेरक परिस्थिति प्राप्त हुई।

सामाजिक व्यवस्था को बेहतर बनाने हेतु संसद एवं विधान भवन में निर्मित कानून परिस्थिति से सुसंगत न होने के कारण जीवन के अनेक क्षेत्रों में विसंगति आ गयी। जहाँ-जहाँ विसंगति आई वहाँ-वहाँ व्यंग्य विधा के लिए प्रेरक, प्रोत्साहक परिवेश प्राप्त हुआ। इस रूप में समाज का मानदंड हो गया कि जिस व्यक्ति के पास जितना पैसा और सत्ता है, वह उतना ही सम्मानित एवं महान समझा जाता है। इस विरूपता ने भावुक मन के कारण व्यंग्य का स्वर प्रखर किया। परिणामस्वरूप व्यंग्य विधा की व्यापक धारणा तैयार हुई। समाज सुधार के नाम पर स्वार्थी तथा भ्रष्ट नेतागण, फैशनपरस्ती, घूस, चमचागिरी, जाली उद्योग आदि विभिन्न आडम्बरों के कारण व्यंग्य विधा को फलने-फूलने का मौका प्राप्त हुआ।

इस रूप में व्यंग्य साहित्य का संबंध अधिकांशतः समसामयिक समस्याओं में रहता है। सामाजिक समस्या जितनी अधिक व्यापक तथा वास्तविक होती है, व्यंग्य साहित्य उतना ही महत्त्वपूर्ण और सार्थक होता है। व्यंग्यकार समस्याओं के कारणों की तह में जाकर उन कारणों पर कई बार निर्दयता अथवा क्रूरता के साथ प्रहार भी करता है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में समस्याओं की विविधता के कारण ही व्यंग्य विधा हेतु सशक्त वातावरण तैयार हुआ। उस समय स्वतंत्रता पूर्व के संजोये हुए सभी सपने टूटने लगे। जीवन के स्वस्थ तथा ध्वस्थ मूल्यों के कारण देश की राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, व्यक्तिगत आदि स्तरों पर गिरावट आई। भ्रष्टाचार से इस समय तक कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रहा। अशिक्षित नेता संस्थाओं के कर्णधार बनकर शिक्षित लोगों को मूर्ख बनाने लगे। प्रशासन में अफसरों की घूसखोरी, मंत्रियों की बेईमानी, व्यापारियों की काला बाजारी आदि खुलेआम होने लगी। ऐसी ही सामाजिक विद्रूपता ने गोपाल चतुर्वेदी जैसे संवेदनशील चिंतक को व्यंग्य विधा में उतरने का मार्ग प्रशस्त किया।

4.1 राजनीतिक व्यंग्यों में भ्रष्टाचार का उद्घाटन

स्वातन्त्र्योत्तर काल में भारतीय मनःस्थिति को प्रभावित करने वाला प्रमुख क्षेत्र राजनीतिक क्षेत्र ही रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से ही जनजीवन के साथ राजनीति का गहरा संबंध रहा है। 1947 ई० में मिली स्वतंत्रता एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटना रही है। अंग्रेजी शासन ने इस देश में नौकरशाही को पूरी तरह पल्लवित और पुष्पित किया है। किंतु गाँधीवाद एवं साम्यवाद की सम्मिलित छाया में गतिशील भारतीय राजनीति को साम्प्रदायिकता के सर्प ने डस लिया, परिणामस्वरूप देश का विभाजन हुआ। इसी सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति में ही भारतीय लोकतंत्र की स्थापना हुई।

भारत में प्रजातंत्रात्मक शासन होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को विचार विमर्श करने की स्वतंत्रता है। वह अपने विचारों एवं भावों को भाषा, साहित्य, चित्रकला आदि के माध्यम से व्यक्त कर सकता है। विचार स्वातंत्र्य होने के कारण यहाँ व्यंग्य की जड़े मजबूत हुईं तथा व्यंग्य के क्षेत्र का भी विस्तार हुआ। वर्तमान समय में रामराज्य की कल्पना साकार न होने तथा राजनेताओं की कुर्सी की चाहत के कारण व्यंग्य का सबसे अधिक प्रभावी क्षेत्र राजनेता तथा राजनीति ही रहा है। एक व्यंग्यकार इनके क्रियाकलापों, कथनी-करनी में पाई जाने वाली असंगतियों का पर्दाफाश करता है और व्यंग्य के माध्यम से जनता में आक्रोश भी पैदा करता है। राजनीतिक परिवेश निरंतर कलुषित होता जा रहा है। शासक जनता को उपदेश देता है-सादगी और संयम बनाए रखने का और स्वंय अवसर मिलते ही धन जुटाने में लग जाता है।

कन्हैया लाल गोपाल चतुर्वेदी के विषय में कहते हैं –"गोपाल अपना विषय और अपना शिकार चुनने में कोई चांस नहीं चूकते। संसद हो या सरकार, सेवाधाम हो या शौचालय, गोपाल किसी भी मुद्दे को उठावे, उसमें कोताही की गुंजाइश नहीं रखते उनका कोई भी मुद्दा राष्ट्रीय मुद्दे से कम नहीं होता।.....गोपाल ऐसे छोटे-छोटे मुहल्लाई मुद्दों से अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों को निबटा देते हैं। असल में वे राष्ट्रीय से अंतर्राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय से राष्ट्रीय के बीच छलांगें लगाते हैं।"[1] गोपाल जी चूंकि

प्रशासनिक अधिकारी थे अतः वे राजनीतिक एवं प्रशासनिक गतिविधियों से भली भांति परिचित हैं। राजनीति से संबंधित चुनाव, प्रजातंत्र, नेताओं, संसद आदि में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश गोपाल जी ने अपने व्यंग्यों में बड़ी ही बेबाकी से किया है।

4.1.1 प्रजातंत्र

भारत में प्रजातंत्रीय व्यवस्था की स्थापना से जनता में यह विश्वास तथा आस्था जागी कि देश के लिए जनता महत्त्वपूर्ण है। देश के नियमन की शक्ति जनता के हाथ में रहेगी। दूसरी ओर जनता ने 'रामराज' की अभिकल्पना कर रखी थी। इस प्रकार प्रथम आम चुनाव के समय भारत में एक आदर्श वातावरण बना हुआ था। जनता ने नेहरू जी के नेतृत्व वाली कांग्रेस पार्टी को विजय दिलाई थी। नेताओं के नैतिक मूल्य और आदर्शवादिता के कारण प्रथम पंचवर्षीय योजना सफल रही थी। लेकिन द्वितीय पंचवर्षीय योजना और दूसरे आम चुनाव के समय से प्रजातंत्रीय व्यवस्था और भारतीय राजनीति में विघटन प्रारम्भ हुआ।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पनपा प्रजातंत्र पुराने राजतंत्र से भिन्न नहीं है। निरंकुश राजाओं की भांति प्रजातंत्र में नेता के रूप में नया सामंत पैदा हुआ है। चुनाव, मतदान आदि केवल दिखावा मात्र है। आम आदमी के लिए प्रजातंत्र में कोई स्थान नहीं बचा है। सियासत में नेता जनता के साथ खिलवाड़ करता है, उसे बड़े-बड़े सपने दिखाता है। जनतंत्र में सरकार जनता को रोटी, कपड़ा से लेकर मकान और रोजगार मुहैया कराने की बात करता है, लेकिन सरकार के ये बड़े-बड़े वादे जनता को दिखाए हुए सपने धरे के धरे रह जाते हैं। इसी व्यवस्था पर गोपाल जी व्यंग्य करते हुए कहते हैं, "यही आलम भारतीय जनता का है। वह दाने-दाने, भूख, अभाव, भ्रष्टाचार, कुपोषण, सामाजिक कुरीतियों, सरकार की बेरुखी वगैरह से तंग है। उसे कोई दाल-रोटी के सपने दिखाए, बेरोजगारी हटाने का वादा करे तो उसका ऐसों के लुभावने चस्कों में आना लाज़मी है। इतना ही नहीं, चस्कों के चाणक्य उनके सिर के ऊपर छत, तन पर कपड़े, सुशासन वगैरह-वगैरह का वादा करते हैं, ठीक उसी शैली में जैसे कैंसर के रोगी कोई जादू टोने से

स्वस्थ होने का।'[2] शरद जोशी ने भी 'सरकार का जादू' नामक व्यंग्य में प्रजातंत्र में जनता की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला है। इस लेख में सरकार को काटने वाले यंत्र के रूप में चित्रित किया गया है। जो गरीब जनता से बड़े-बड़े वादे करता है और उसी का पेट काटता है। "यह हमारे देश का यंत्र है साहबान और यह गरीब का पेट काटता है। पिछले तैंतीस सालों से यह प्रोग्राम आपके सामने पेश करते आ रहें हैं। हमें अपना आशीर्वाद दीजिए, अपना गुड विशेज़ दीजिए साहबान।''[3] इस प्रकार के लोकतंत्र में जनता का कुछ भी नहीं होता है। जनता को जनतंत्र के नाम पर भरमाया जाता है। सियासत के नेता लोकतंत्र में आकर केवल अपना ही भला करते हैं। वे अपनी तथा अपनों की जेब भरते हैं। "परिवारवादी क्षेत्रीय नेताओं ने परिवार को प्रजातंत्र का पर्याय बना दिया है उनका वश चले तो दूर-पास का संबंधी विधान या लोकसभा - राज्यसभा की शोभा बढ़ाए।''[4] सत्ता में आने के लिए ये नेता अपने से उच्च पद पर बैठे हुए लोगों की नोटों के माध्यम से जो पूजा करते हैं उन नोटों की वसूली वे सत्ता में आने के बाद आम जनता से ही करते हैं।

प्रजातंत्र की स्थापना होने पर भी व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। जिसके हाथ में पैसा और पावर है उसे लिए प्रजातंत्र सब कुछ है। गोपाल चतुर्वेदी की दृष्टि में जनतंत्र खंभातंत्र है- ''खंभातंत्र का सारा कारोबार, विज्ञापन, भाषण, आश्वासन, विशुद्ध व्यापार के तौर तरीके से होता है। खंभातंत्र की राजनीति मूल रूप से माल बेचने की राजनीति है। वहाँ नेता की क्लीन छवि का अर्थ नेता के निजी उसूलों और आचरण से नहीं बल्कि उसके द्वारा इस्तेमाल साबुन से है। जो नेता सिर्फ विदेशी साबुन से नहाता है, वही साफ और गोरा होता है। खंभातंत्र का 'सत्य' समय और स्थान के साथ बदलता है। बड़े खंभों का यकीन रहता है कि वे सबको समान रूप से और सर्वदा बेवकूफ बना सकते हैं।.....प्रजातंत्र का आना खंभातंत्र को कैसे कबूल हो! खंभों ने धन-यंत्र और तंत्र-मंत्र कायम रखने की कोशिश की-

इस प्रजातंत्र के पेड़ों में कोई खंभा है नहीं?

क्यों नहीं सरकार! अपने खंभे कहाँ नहीं है?''[5]

गोपाल जी जहाँ जनतंत्र को खंभातंत्र कहते हैं वही अमृतराय का इसे भोंपूतंत्र के नाम से पुकारते हैं-"भोंपू की बड़ी महिमा है। उसके बिना कोई कुछ कर ही नहीं सकता। कम से कम लोकतंत्र में और भारत जिस अर्थ में संसार का सबसे विशाल लोकतंत्र है, एक पगला अभी उस रोज चैक में बार-बार उसे भूल से भोंपूतंत्र कह रहा था।''[6] अर्थात् प्रजातंत्र केवल नाम के लिए प्रजातंत्र और लोकतंत्र है। प्रजातंत्र में प्रजा को लूटना ही नेताओं का कार्य है। जनहित के नाम पर बड़ी-बड़ी योजनाएं लाना और उसको पूरा करने के लिए ऊपर से नीचे कमीशन चोरी ही प्रजातंत्र है। जनता के नाम पर लायी गई योजनाओं से जनता का भला नहीं होता है बल्कि इन योजनाओं के नाम पर उसे उल्लू बनाकर सरकार और उसके अधिकारी केवल अपना उल्लू ही सीधा करते हैं। ''सत्ताधारी राजनीतिज्ञ हमेशा जनहित को उधार खाए बैठे रहते हैं। वह जानते हैं कि ऐसी किसी भी स्कीम में करोड़ों का बजट है। पंद्रह-बीस परसेंट का कट के अफसर के माध्यम से मिलना ही मिलना है। इससे बेहतर क्या होगा कि वोटर का भी भला हो और अपना भी। इसीलिए तो विद्वान बताते हैं कि जनतंत्र नेता के लिए नेता के द्वारा उल्लू बनाने का तंत्र है। दल कोई भी हो। इस मंत्र को अपनाने में सब एकमत हैं।''[7] इस प्रकार नेता जनता के भले के नाम पर केवल अपना ही भला करते हैं। इस प्रजातंत्र में प्रजा के लिए प्रजा द्वारा कुछ भी नहीं किया जाता है बल्कि प्रजातंत्र में नेताओं द्वारा अपने आदमियों के लिए सब कुछ किया जाता है। रवींद्र त्यागी के अनुसार भी प्रजातंत्र में अब प्रजा का कोई महत्त्व नहीं रह गया हैं-"जहाँ तक सरकार का प्रश्न है स्थिति यह है कि होने को तो प्रजातंत्र है पर वास्तविकता यह है कि तंत्र जो है वह प्रजा से अब भी शक्तिशाली है। प्रजा की हम इज्जत करते हैं और इसी कारण प्रजा शब्द का प्रयोग तंत्र से पहले किया गया है। पर सच्चाई में स्थिति वही है जो सीता राम शब्द में सीता की और राधा कृष्ण में राधा की।''[8] इस प्रकार अब केवल नाम का ही प्रजातंत्र है। इसमें प्रजा को योजनाओं आदि के नाम पर विकास का केवल वादा भर ही किया जाता है। इन

योजनाओं का लाभ आम आदमी की जगह बड़े-बड़े उद्योगपति और ठेकेदार कमाते हैं विकास के नाम पर उन्हीं का विकास होता है। आम जनता के हाथ कुछ भी नहीं लगता है। अतः वाकई में प्रजातंत्र सरकार के द्वारा प्रजा को बेवकूफ बनाने का तंत्र है जिसमें लोक लुभावने वादे तो हर रोज किये जाते हैं किंतु उसे पूरा कभी नहीं किया जाता है।

4.1.2 चुनाव

चुनाव को लोकतंत्र की वास्तविक प्राणशक्ति माना जाता है। इसके बगैर लोकतांत्रिक व्यवस्था की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। संसदीय लोकतंत्र में शासन व्यवस्था चलाने के लिए आम जनता बहुमत द्वारा अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है। ये चुने हुए प्रतिनिधि आगे बहुमत द्वारा अपने नेता का चुनाव करते हैं जो अपने इच्छित सहयोगियों के साथ सरकार बनाता है और शासन की बागडोर संभालता है। अर्थात् चुनाव ही वह महत्त्वपूर्ण प्रणाली है जिसके द्वारा लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना होती है। लोकतांत्रिक प्रणाली की विसंगतियों की ही भांति चुनाव व्यवस्था की विदूरपता को भी गोपाल चतुर्वेदी ने अपने व्यंग्यास्त्र का लक्ष्य बनाया है।

जनतंत्रात्मक शासन होने के कारण प्रति पाँच वर्ष उपरांत सरकार बनाने हेतु आम चुनाव कराए जाते हैं। यह अवधि विशेष परिस्थिति में जैसे आपातकाल में सरकार के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित होने के कारण न्यूनाधिक हो सकती है। हमारे देश में चुनावी भ्रष्टाचार अत्यधिक बढ़ गया है। चतुर्वेदी जी ने वोट और नोट के संबंध पर तीखा प्रहार करते हुए कहा है, "प्रजातंत्र है तो चुनाव है। चुनाव है तो वोट है। वोट है तो नोट है। बिना नोट के प्रचार कैसे होगा? फिर प्रचार है तो कार्यक्रम क्यों न हो फरेबी खोट का तथा सबके कल्याण का। आजादी के बाद हाथी घटे है, गजदंती वादों का चलन बढ़ा है। आज का हर नेता एक सफेद हाथी है। वह जनता के सामने सिर्फ अपने दिखावे के दांत दिखाता है। चुनाव के संकट के समय यह नुमाइश और बढ़ जाती है।"[9] नगरपालिका जैसे लघुस्तर के लिए भी जब वोट खरीदे जाते हैं या

शराब आदि पिघलाकर वोटरों को अपने पक्ष में किया जाता है तो फिर अन्य बड़े चुनावों का तो कहना ही क्या। आज का मतदाता भी इतना चतुर हो गया है कि माल किसी का खाता है और वोट किसी को देता है। मतदाताओं के मत केवल शराब और नोट से ही नहीं खरीदे जाते हैं वरन् अन्य प्रलोभनों से भी खरीदें जाते हैं। जैसे चुनाव के दौरान, गरीबों को रजाई, कम्बल, साड़ी आदि बांटकर जहाँ प्रत्याशी इन गरीब वोटरों को लुभाने का प्रयास करते हैं वही पढ़े लिखे बेरोजगार नवयुवकों को नौकरी आदि का लालच देकर वोट के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया जाता है। इस युक्ति पर गोपाल जी का व्यंग्य देखिये- "जाने आपको पता है कि नहीं। हमने पिछले पाँच साल में आप लोगों के भले के लिए पाँच हजार फाइलें खुलवाई हैं। वह सब सरकार में इस दफ्तर से उस दफ्तर में चक्कर काट रही है। इन्हीं कागज़ो में पचास हजार नई नौकरियों, रेल की नई लाइन, खेल का स्टेडियम और एक दर्जन कारखानों के प्रस्ताव है। हमें इस बार आपका आशीर्वाद प्राप्त हुआ तो हमारे और आपके ये सब सपने साकार होंगे।"[10] इस प्रकार जैसे ही चुनाव नजदीक आते हैं, नेता जनता को लुभाना आरम्भ कर देते हैं।

चुनाव वर्ष के दौरान पार्टी प्रत्याशी और कार्यकर्ताओं का चयन किस प्रकार करती है उसे गोपाल जी इस प्रकार बताते हैं-

"तो आप कार्यकर्ता बनेंगें।

जी हाँ!

इस काम का कोई अनुभव?

पिछले चुनाव के दौरान तो स्कूल में था पर अब तक तीन बसें जलायी

हैं और दस-पंद्रह के काँच तोड़े हैं। स्कूल के दिनों में 'मिस' की मेज

पर छिपकली और मेढ़क डाला था। प्रिंसिपल ने स्कूल से ही निकाल दिया

था।'

आपका सैद्धांतिक दृष्टिकोण क्या है?

मैं आपका सवाल नहीं समझा।'

'मेरा मतलब है कि आपकी कोई पॉलिटिकल आडियोलॉजी है?'

मैं किसी दूसरे पर यकीन नहीं करता। मुझे सिर्फ अपने बाहुबल पर

भरोसा है।'

प्रत्याशी चुन लिया गया दूसरे की गुहार लगती है।''[11]

इस प्रकार पार्टी द्वारा बाहुबली और गुण्डे जैसे लोगों का चयन पार्टी कार्यकर्ता या प्रत्याशी के रूप में किया जाता है। ये बाहुबली चुनाव के समय जनता को डरा धमकाकर अपने पक्ष में वोट डालने पर मजबूर करते हैं और जहाँ पर उन्हें तनिक भी यह संदेह होता है कि जनता इनके पक्ष में वोट नहीं डालेगी वहाँ पर ये चुनाव बूथ को ही अपने कब्जे में करके चुनाव अधिकारियों को डरा धमका कर सारे वोट अपने लोगों द्वारा अपने पक्ष में डलवाकर चुनाव जीत जाते हैं। ये ही बाहुबली विधायक, मंत्री आदि बनकर विकास करने की जगह देश में सांप्रदायिकता, गुण्डागर्दी, भ्रष्टाचार आदि को बढ़ावा देते हैं।

चुनाव के समय नेता सर्वत्र भ्रमण करते हैं। मतदाताओं के आगे हाथ भी जोड़ते हैं। उन्हें खिला पिला कर खुश करते हैं ताकि वोट उन्हें मिल सके वे ऐसे-ऐसे स्थानों पर जाकर भी अपनी सभाओं का प्रचार करते हैं या पैदल दौरा करते हैं जहाँ सामान्यतः दो मिनट खड़ा रहना भी उन्हें स्वीकार न होता। प्रत्याशी चुनाव जीत जाने पर संसद और विधानसभाओं में जाकर भ्रष्टाचार फैलाते हैं। चाहे कैसी और

किसी भी प्रकार की दुर्घटना हो नेता सिर्फ मुसकुराता रहता है। जीतने के बाद उसे किसी से कुछ भी लेना देना नहीं-"वैसे हमें मुस्कराते, खिलखिलाते, ठहाका लगाते नेता पसंद आते हैं। बाढ़-सूखा, गरमी, दुर्घटना, हारी-बिमारी, दंगा-फसाद कुछ भी हो, नेता हँसता दिखता है। दिखना भी चाहिए। इतनी भीषण दुर्घटना हो गई और कुल सौ डेढ़ सौ ही मरे इतने प्रयास से दो संप्रदायों में लड़ाई कराई और बस दस-बारह की ही मौत आई। यह कोई कम संतोष का मसला है। क्या रोना परिवार वालों का काम है। दंगा हो या प्राकृतिक आपदा सबका शिकार सबसे औसत और हाशिए पर खड़ा इन्सान ही होता है।"[12]

राजनीतिक दल चुनाव जीतने के लिए किस प्रकार झूठ, फरेब का सहारा लेकर जनता को अपने झूठ से बर्गलाते हैं इसका चित्रण परसाई जी ने भी कुछ इस प्रकार किया है-"उन्होंने (जनता पार्टी वालों ने) कहा टूटी-टाँग ने राष्ट्रीय जीवन में आपको महत्त्वपूर्ण बना दिया है। हमें अनुमति दीजिए कि हम प्रचार कर दें कि कांग्रेसियों ने आपकी टांग तोड़ दी है। इससे सारे देश में कांग्रेस के विरूद्ध वातावरण बनेगा। दूसरी ओर कांग्रेस वाले भी यही कहते हैं-आप हमें इतनी छूट दे दें कि हम प्रचार कर सकें कि जनता पार्टी के लोगों ने आपकी टांग तोड़ दी है। इससे जनता पार्टी के खिलाफ हो जाएगी।"[13] यह विडम्बना ही है कि महत्त्वपूर्ण चुनावों, जिनके परिणामों पर समूचे राष्ट्र का भविष्य निर्भर करता हो, का फैसला किसी की टूटी टाँग द्वारा उत्पन्न सहानुभूति के आधार पर होता है।

'बचुआ की शिक्षा' में व्यंग्य किया गया है कि चुनाव में प्रत्याशी नारा तो देश उद्धार का लगाते हैं लेकिन भरते हैं अपना घर, उद्धार करते हैं अपने घर का। गुण्डों को पालते हैं, जो दिन रात प्रचार का कार्य करते हैं। चुनाव को हर हाल में वे जीतना चाहते हैं चाहे जितने भी पैसे उन्हें खर्च करने पड़े। क्योंकि उन्हें पता होता है कि चुनाव जीतने के पश्चात् वे चुनाव पर खर्च की गई अपनी सारी रकम वसूल कर लेंगें वो भी ब्याज सहित। वोट लेने के लिए प्रत्याशी क्या-क्या नारे लगाते हैं, इसका चित्र चतुर्वेदी जी के शब्दों में-

"बाबू जी की एक ही इच्छा

करे तरक्की बच्चा-बच्चा।

महिलाओं को लुभाने के लिए उनके कार्यकत्र्ताओं की पुकार थी-

बाबू का बस यह अरमान

महिलाओं का हो सम्मान।''[14]

इस प्रकार चुनाव के दौरान ये देश के विकास, देश के बच्चों का विकास, देश की महिलाओं के सम्मान के अनेक नारे लगाते हैं किंतु चुनाव जीतने व सरकार बनने के बाद यह सब कुछ भूल जाते हैं।

चुनाव के दौरान वोट पाने के लिए नेता हर वो काम करता है जिसे उसने न कभी किया है न करना चाहेगा और ऐसे कार्यों को करते हुए अंदर से दुखी होने पर भी वो सदैव मुस्कुराते रहते हैं। चुनाव के समय नेता गंदी मलिन बस्तियों से गुजरते हुए भी मुस्कुराते रहते हैं। इस देश में कोई सुखद बात हो या दुखद नेता के मुख पर सदैव ही मुस्कान के भाव दिखते हैं। नेताओं की इसी दिखावटी मुस्कान के संदर्भ में गोपाल जी कुछ इस प्रकार व्यंग्य करते हैं। जब कोई पत्रकार नेता जी की मुस्कान का राज पूछते हैं तब नेताजी उत्तर देते हुए कहते हैं- ''यही तो फर्क है जनता और नेता में। नेता रास्ता दिखाता है, प्रेरणा देता है। हमें आपकी दुर्दशा पर मुस्कराना पड़ता है। आपकी गरीबी पर हँसना पड़ता है। सच मानिए, जब जन-संपर्क के दौरान हम कीचड़ की बदबू भरी बस्तियों में जाते हैं तो हमें रोना आने लगता है कि कहाँ फँसे! पर क्या करें! मज़बूरी में मुस्कुराते हैं, जिससे आप निराश न हों, दिल छोटा न करें शुरू में अटपटा लगता था, अब तो आदत पड़ गई है। बिना प्रयास के मुँह की नसें मुसकान की मुद्रा में अपने आप खिंची रहती हैं।''[15] इस प्रकार जनता के वोट तथा अपने लाभ के लिए चुनाव के दौरान नेता किसी भी हद तक जा सकते हैं।

चुनाव के समय मतदाताओं को अनेक प्रलोभन दिए जाते हैं। अनेक प्रकार की वस्तुएँ जनता को लुभाने के लिए बाँटी जाती हैं। घूँघट, बुर्के आदि की आड़ में पैसे लेकर लोग मरी हुई स्त्रियों का भी वोट

डाल देते हैं। गोपाल चतुर्वेदी ने इसके लिए संभावना व्यक्त की, कि चुनावों में भ्रष्टाचार, नकली वोट देना आदि को रोकने के लिए मतदाताओं को फोटोयुक्त परिचय पत्र दिए जाएं, ताकि वे फोटो से चेहरा मिलने पर ही वोट के अधिकारी माने जाएं। लेकिन मतदाता भी कम चतुर नहीं है। चार परिचय पत्रों पर अलग-अलग मुखौटे लगाकर फोटो खिंचवाकर लगाई जाए तो शक करने की कोई गुंजाइश नहीं रहेगी। इस प्रकार सरकार भ्रष्टाचार रोकने के लिए चाहे जो भी कदम उठाए किंतु नेता अपने मतदाताओं को भ्रष्टाचार का रास्ता सुझा ही देते हैं। सरकार डाल-डाल तो उम्मीदवार पात-पात चलता है।

वर्तमान समय में तथा स्वातंत्र्योत्तर काल के मतदाताओं में भी बहुत अंतर आया है। उस समय जनता सीधी एवं सरल होती थी जो उम्मीदवारों की मीठी व चिकनी चुपड़ी बातों में फँसकर देश के विकास के नाम पर उन्हें वोट देकर उन्हें संसद या विधान सभा तक बड़ी ही आसानी से पहुँचा देती थी। किन्तु आज की जनता बहुत चतुर हो गई है वह प्रत्याशी की बातों में सरलता से नहीं आती है। वह इस तथ्य को भली भांति जानती है कि चुनाव के दौरान किए गए वायदे बरसाती मेढ़क की भांति है जो चुनावी मानसून में ही देखने और सुनने को मिलते हैं। इसलिए आज का मतदाता चुनाव में वोट देने से पहले सुविधा चाहता है।

लोकतंत्र में वोट देने का क्या महत्त्व है, पचास प्रतिशत से अधिक मतदाता आज भी यह नहीं जानता है उसके सामने तो केवल नोट का ही महत्त्व है। उम्मीदवार की योग्यता-अयोग्यता से ऐसे मतदाताओं का कोई सरोकार नहीं होता। नोट लेकर नकली वोट देने वाले मरे हुए व्यक्तियों का नाम बताकर वोट डाल आते है। चुनाव के प्रचार कार्य में विभिन्न उम्मीदवार अपनी-अपनी आम सभाओं का आयोजन करते हैं। विरोधी दल वाले ऐसे अवसर की तलाश में रहते हैं कि सभा में किसी प्रकार से भी विघ्न डाला जाए। ऐसी ही एक घटना का चित्रण गोपाल चतुर्वेदी जी ने 'चुनाव के बाद' व्यगं्य लेख में इस प्रकार किया है, "पार्टी का नेता जिस समय भाषण दे रहा था एक पत्थर उसे आकर लगा। उसके बाद

कार्यकर्ता उसको अस्पताल ले जाने की तैयारी कर रहे थे, लेकिन नेता फोटो खिंचवाने के लिए कहता है, जिससे विरोधी पार्टियों को बदनाम किया जा सके।''[16]

चुनाव के समय प्रत्याशी का भगवान वोटर होता है। वोट के आधार पर उसके भाग्य का निर्णय होता है। चतुर्वेदी जी ने इस स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है-"अरे महाराज! इस बार दर्शन नहीं दोगे? हमने तो आते ही आपके दरवाजे मत्था टेका था। उन्होंने पंडित जी को निमंत्रित किया। इसके बाद बचुआ के साथ अपनी गाड़ी पंडित जी को लेने भेजी। पंडित जी पधारे तो नेता जी ने श्रद्धापूर्वक उनके चरण छुए, मिठाई मँगाई और निवेदन किया, "भगवान जाटव और यादव सम्मेलन हमारे समर्थन में हो चुके हैं, एक ब्राह्मण सम्मेलन भी करवा दीजिए। भोजन पानी की व्यवस्था हमारी और अध्यक्षता आपकी। काफी हिसाब-किताब के बाद पाँच लाख में पंडित जी से सौदा पटा।''[17] इस प्रकार चुनाव के दौरान मतदाता प्रत्याशी के लिए भगवान के समान होता है। प्रत्याशी के लिए एक चोर का वोट भी उतना ही महत्त्व रखता है जितना एक साधु का। इसलिए चुनाव के समय नेता गरीब, अमीर, छोटे-बड़े, साधु-संत, चोर उचक्के सभी में बिना कोई भेद किए सबको एक समान दृष्टि से देखता है, और सभी को अपना भगवान मानता है। जिस प्रकार मनोकामना पूरी होने के लिए भगवान को भेंट चढ़ाई जाती है, उसी प्रकार चुनाव में सफलता पाने के लिए मतदाता रूपी भगवान् को उम्मीदवार भेंट चढ़ाकर प्रसन्न करने का प्रयास करता है।

जिस प्रकार दीपावली के समय हम माँ लक्ष्मी से अपने परिवार की सुख समृद्धि की कामना करते हुए उनकी पूजा, अर्चना एवं आरती गान करते हैं। उसी प्रकार नेता चुनाव रूपी दीपावली में किस प्रकार पूजन करते हैं इसे इस प्रकार गोपाल जी ने दर्शाया है-"उन्होंने हमें आगे समझाया कि देश के किस वर्ग को दीवाली से क्या-क्या अपेक्षा है। मसलन मुल्क के नेता आजकल साष्टांग दंडवत कर एक ही मनौती मानते हैं और काका स्टाइल में प्रार्थना करते हैं-

लक्ष्मी मैया! वर दे

धन-दौलत कुछ नहीं चाहिए

खाली झोली देवी, अपनी

बस वोटों से भर दे।''[18]

नेता ऐसे भले ही भगवान की पूजा न करते हों पर चुनाव के समय उन्हें सारे देवी-देवता याद आ जाते हैं। भगवान् की तो बात ही छोड़िये ये नेता चुनाव के दौरान जनता को भी भगवान मानकर उनकी जय-जयकार करते हैं।

जनता से वोट पाने के लिए प्रत्याशी कुछ भी कर सकता है। ऐसे नेताओं की गोपाल जी ने अनेक नामों से उपमा की है जैसे, "आम आदमी के लिए चुनावों का शैक्षणिक पहलू भी है। साँप, बिच्छू, राक्षस, अजगर, बगुला आदि के गहन प्रचार और विज्ञापन से जनता को वन्य जीवन की जरूरी जानकारी मिलती है। उसका यह भी ज्ञानवर्धन होता है कि राजनीति में इस किस्म के इन्सान ही कामयाब होते हैं।''[19] अर्थात् यह नेता ऐसे होते हैं कि इनके साथ कितना ही अच्छा क्यों न कर लो लेकिन मौका मिलने पर यह आपसे धोखा करने में नहीं चूकते हैं।

गाँवों की राजनीति शहरी राजनीति से कुछ बातों में भिन्न है। वहाँ शिक्षा का अधिक प्रसार न होने के कारण वोटर को डरा धमका कर भी वोट प्राप्त किए जाते हैं। दादा बनकर मौज की जा सकती है। आम-चुनाव प्रक्रिया इतनी दोषपूर्ण हो गई है कि जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरित्रार्थ हो रही है। मत-पेटियाँ गायब कर देना और सील तोड़ कर फर्जी वोट डालना आम बात हो गई है।

इस प्रकार राजनीतिक भ्रष्टाचार में चुनाव एक विशेष कड़ी है। चुनावों में जीत हासिल करने के लिए पार्टियाँ एवं प्रत्याशी कुछ भी करने के लिए तैयार रहते हैं। एक ओर ये जनता को नोट, साड़ी, कम्बल आदि बाँटकर वोट लेने का प्रयास करते हैं तो वहीं दूसरी ओर इन सबसे काम न चलने पर ये आम जनता को डराने धमकाने से भी नहीं चूकते हैं। चुनाव जीतने के लिए ये जहाँ मंदिरों में पूजा-पाठ व दान करते हैं वहीं शराबियों को शराब पिलाकर वोट माँगते है। जिस प्रकार 'प्यार' और 'वार' में सब कुछ जायज़ होता है उसी प्रकार चुनाव में वोट पाने के लिए किसी भी कार्य को करना जायज़ है। इस सिद्धांत का पालन करते हुए ये राजनीतिक पार्टियां और प्रत्याशी चुनाव में उतरते हैं और उसे जीतते हैं। चुनाव में हो रहे इसी प्रकार के भ्रष्टाचार पर गोपाल चतुर्वेदी के साहित्य में पर्याप्त व्यंग्य लेख देखने को मिलते है जो जनता को सजग करने का भी प्रयास करते हैं।

4.1.3 नेता

गोपाल चतुर्वेदी का रचना संसार वर्तमान भारत के राजनीतिक जीवन का आलोचनात्मक दस्तावेज़ है। भारत के राजनीतिक यथार्थ का अध्ययन करते हुए उन्होंने राजनीतिक व्यवस्था, राजनीतिक दलों और लोकतांत्रिक प्रणाली की विसंगतियों को उजागर किया है। लोकतंत्र जनता की लोकप्रिय सरकार की शासन व्यवस्था है जिसका चुनाव स्वंय जनता द्वारा बहुमत के आधार पर किया जाता है। जनता में लोकप्रिय बने रहना राजनेताओं की आवश्यकता भी है और उनके राजनीतिक अस्तित्व की अनिवार्य शर्त भी क्योंकि उनकी सफलता का यही एक पैमाना भी है और तरीका भी। लेकिन हमारे देश का यह दुर्भाग्य रहा है कि हमारे राजनेता जनता में दिखावा तो देश को समाजवाद के पथ पर ले जाने का करते हैं लेकिन जनता में समाजवाद की वैज्ञानिक सोच को उन्होंने भी पनपने नहीं दिया। आज आधुनिक साहित्य जहाँ 'नायक' पूर्णतया तिरोहित हो गया है वहाँ राजनीतिक नेता सबसे बड़े 'खलनायक' के रूप

में उभरा है। किंतु पहले ऐसा नहीं था। पहले नेता नाम आदमी की तरह ही बड़े साधारण तरीके से रहता था।

वर्तमान संदर्भ में नेता का चरित्र ही व्यंग्य का आलम्बन बन गया है। चतुर्वेदी जी ने नेता के चरित्र की पड़ताल बड़ी ही सूक्ष्मता से की है। सत्ता विपक्ष के नेता-मंत्री सभी उनके व्यंग्य बाणों के शिकार बने हैं। नेता के शरीर के भूगोल के नाप के साथ उसका बुद्धि परीक्षण, सामान्य ज्ञान, उसके क्रियाकलाप और छल-छद्म सभी पर व्यंग्यकार की पैनी नजर रही है। जनता की समस्याएं जैसे-जैसे बढ़ी वैसे-वैसे नेता की स्थूल काया का विस्तार भी होता रहा है। किंतु स्वतंत्रता के समय ऐसी स्थिति नहीं थी-''पहले नेता और जनता में खास फर्क नहीं था। भूले-भटके लोग नेता को भी सामान्य जनता का सदस्य मान लेते थे। टोपी जनता भी लगाती थी और नेता भी। दोनों खादी पहनते थे। गरीबी में गुजारा करते।''[20] अतः पहले के राजनेताओं को कुर्सी की, पैसे की चाह नहीं होती थी। वे तो केवल और केवल जनता और देश का हित चाहते थे।

आज वर्तमान युग में नेता का चेहरा बदल गया है वह अंदर से कुछ और बाहर से कुछ और ही होते हैं। सियासत में आना आसान कार्य नहीं है। सभी व्यक्ति नेता नहीं बन सकते। इस भारतीय समाज में आई.एस., पायलट, शिक्षक, बैंक आदि की नौकरी लिए विभिन्न कोचिंग है किंतु नेता बनाने के लिए न ही कोई संस्थान है और न ही कोई कोचिंग। इसके लिए तो व्यक्ति में अपना हुनर होना चाहिए। एक अच्छे नेता के गुण बताते हुए गोपाल जी कहते हैं-''चुनाव वह जीतते हैं जो अन्य जातियों को आश्वासन, प्रलोभन, दारु, धन की जुगाड़ से जोड़ सकें। आदर्शों और उसूलों की पीक करें, जरदे-किवाम का मजा खुद लें।''[21]

नेता जनता के भले के नाम पर अपना भला करते हैं जनतंत्र में कोई भी सरकार आ जाए नेता घुमा फिरा के सिर्फ जनता को लूटने और उन्हें बेवकूफ बनाने का काम करते हैं। इस प्रकार के भ्रष्टाचार के लिए

सभी दल के नेता एकमत होते हैं। नेताओं के इस भ्रष्टाचार पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए गोपाल जी कहते हैं- ''जनहित के नाम पर भ्रष्टाचार का हर काम सबसे बड़े सियासी राजा के इशारे पर ही होता है। उसूल बड़ा सीधा है-

बस जनहित के नाम पर

है फंडो की छूट

सत्ता का जो सगा

लूट सके तो लूट''[22]

इस प्रकार जनता के भले के लिए वह कुछ भी भाषणबाजी करे किंतु उसका कर्म केवल जनता को लूटना होता है।

सियासत में नेता के लिए कानों का विशेष महत्त्व है। इनके माध्यम से वह बड़े-बड़े कार्य सिद्ध कर सकता है- "सत्ताधारी नेता व अधिकारी के लिए कानों की खास आवश्यकता है। उन्हें अपनी खुशामद ध्यान से सुननी है। जनता की शिकायत पर एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकालनी है। चमचों की सिफारिशों पर ध्यान देना है। नेताओं के अतीत के आधार पर यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि वर्तमान और भविष्य में लगातार उनका अपने कानों के बगैर गुजारा नहीं है, न हो सकता है। दिन में बार-बार जयजयकार के नारे और अपनी प्रशस्ति सुने बिना कौन नेता जिंदा रह सकता है। नेता का एक गुण अपने विरूद्ध लग रहे आरोपों के जवाब में कानों में तेल डाल लेना भी है।''[23] इस प्रकार नेता समय और अवसर के अनुसार कार्य करते हैं जिस समय उनकी प्रशंसा होती है वहाँ वे बड़ी ही शान के साथ दिखाई देते हैं और जहाँ उनकी शिकायत होती है उन पर आरोप लगते हैं वहाँ से वह या तो धीरे से निकल लेते हैं या फिर उन्हें अनसुनी कर जाते हैं।

आजकल के नेता पशु-पक्षियों से भी गए गुजरे हैं। पशु पक्षी अपने मालिक के वफ़ादार होते हैं किंतु वर्तमान समय में मनुष्य इतना निकृष्ट हो गया है कि जो उसका भला करता है उसे ही वह नुकसान पहुँचाने में तनिक भी पीछे नहीं हटता है। गोपाल जी भी नेता और गिद्ध की तुलना करते हुए कहते हैं- "कुछ समझदार नेता और पंछी की तुलना सही बतलाते हैं। उनका कहना है कि नेता और पंछी एक जैसे हैं। दोनों मरे का मांस नोचने में समर्थ हैं। गिद्ध थोड़ा कमजोर पड़ता है। वह अपने बनाए घोंसले वाले पेड़ में छेद करने से बाज नहीं आता है।''[24] जिस प्रकार गिद्ध निर्जीव का मांस नोंचकर खाते हैं। उसी प्रकार नेता असहाय, गरीब, निरीह जनता को लूटकर अपना आशियाना बनाते हैं, अपनी भूख की आग को शांत करते हैं। वे अपने भले के लिए तथा देश का अहित करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। ये नेता देश को खोखला ही बनाते जा रहे हैं। नेता के सत्य का उद्घाटन करते हुए गोपाल जी कहते हैं-"नेता और बारात का एक मात्र आसान उसूल देश और भेड़ (अर्थात् लड़की के माँ बाप) को मूँडना होता है। एक सत्ता का सत्य खोजता है दूसरा दहेज का।''[25]

नेता कभी किसी के बारे में नहीं सोचता वह अपने भले के विषय में ही सोचता है। गोपाल जी नेता को पशु पक्षियों से भी निंदनीय बताते हुए देश का कलंक मानते हैं- "नेता की बात में हमें दम लगा। पालतू पंछियों के अलावा पखेरुओं का नाम नहीं होता है। जनता उसके लिए गौरैया है। एक से दूसरी में कोई अंतर नहीं है। यही हाल नेता का है। चूँकि नेता पालतू तो हो नहीं सकता, इसलिए हर नेता सिर्फ नेता है और जनता की दृष्टि में निंदनीय है। कुछ विचारक इस राय के हैं कि नेता को अपने आपको पंछी कहना पक्षियों का अपमान है। कोई अंधा भी कैसे नेता का हंस, मोर, कोयल, कबूतर या मैना के समकक्ष होने का दावा स्वीकार कर सकता है। ये पंछी प्रकृति के शृंगार है। नेता मानवता का कलंक है।"[26] अर्थात् नेता केवल भाषणबाजी करते हैं, जनता से उन्हें कोई लेनादेना नहीं हैं, मानवता से उनका कोई सरोकार नहीं है। वे तो केवल जनता से ठग करना ही जानते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में बरसाने लाल चतुर्वेदी कहते हैं-"नेता और

अभिनेता समानधर्मी तथा समानकर्मी होते हैं। दोनों ही का काम दूसरों के पैसों पर गुलछर्रे उड़ाना होता है। दोनों को ही अपनी ठग विद्या करनी पड़ती है।''[27] अतः नेता का कार्य सेवा करना नहीं बल्कि ऐश करना मात्र ही होता है जो अपनी इस ठग विद्या से जितने पैसे कमाकर ऐश करेगा आज के युग में वह उतना ही बड़ा नेता होगा।

जनसेवा का दिखावा करने वाले नेता के मन में केवल 'कुर्सी' ही समाई रहती है। कुर्सी को प्राप्त करने के लिए लालायित ये नेता अपनी इस महत्त्वकांक्षा की पूर्ति के लिए कुछ भी करने को तत्पर रहते हैं। उनके कुर्सी प्रेम को जब वोटर जान लेता है तब नेता के लिए बड़ा संकट आ जाता है-"सरकारी दफ्तरों में 'कुर्सी कुर्सी' काफी लोकप्रिय खेल है। राजनीति में यही खेल जनसेवा के नाम पर खेला जाता है। राजनीति के कुर्सी-कुर्सी और क्रिकेट में सबसे बड़ी समानता दोनों का अनिश्चय का खेल होना है। विधायक या संसद बनकर अर्धशतक लगाने वाले और कभी मंत्री का पद हथियाकर शतक लगाने वाले प्रतिभाशाली खिलाड़ी चुनाव के दौरान ज़ीरो पर उड़ जाते हैं।''[28]

नेता जैसे बहुरूपिये को स्पष्टतः सामने लाने के लिए चतुर्वेदी जी कभी उसके व्यवहार या प्रवृत्ति की तुलना क्रिकेट से करते हैं तो कभी उसकी तुलना दाँतों के डॉक्टर से- "दाँत का डॉक्टर दूसरे के दर्द की कमाई खाता है। जैसे नेता जनता की उम्मीदों की।''[29] अर्थात् नेता चुनाव के समय अपनी वाक्पटुता के माध्यम से भाषण देकर जनता को उम्मीदें तो बहुत बंधाता है और उन्हीं से जीत भी हासिल करता है पर चुनाव जीतने के बाद वह उन उम्मीदों का गला घोंट देता है।

वर्तमान युग का नेता इतना शातिर है कि कुर्सी पाने के लिए ही अपने मित्रों को भी धोखा देने से नहीं चूकता है-"हमारे जनतंत्र की खासियत है इसमें टू-इन-वन नेता भी हैं। यह धन की सीढ़ी के साथ, सीडी के प्रयोग में भी माहिर है। यह सीडी ऐसी वैसी नहीं है। यह खुफिया सीडी दृश्य और श्रव्य है। जुझारू नेता न इसमें अपने दोस्त को बख्शता है, न दुश्मन को। वह सर्वज्ञ है। उसे पता है कि सियासत में न कोई

मित्र है न शत्रु। एक गोंद है स्वार्थ की। उससे सब जुड़ते हैं कभी इसमें, कभी उस दल में। सबकी काया कुरसीमय है। जहाँ सत्ता की संभावना नज़र आती है काया वहीं डोल जाती है।''[30]

अतः नेता, वर्तमान युग में राजनीति की सफेद चादर ओढ़े हुए स्वंय को पाक-साफ दिखाते हुए जनता को बर्गलाकर उसका शोषण करने वाला शेर की खाल में छिपा ऐसा भेड़िया है, जो बाहर से कुछ और अंदर से कुछ और ही नज़र आता है। उसकी छवि बाहर से जितनी साफ नज़र आती है असल में अंदर से उतनी ही धूमिल और मटमैली है। सत्ता में आकर जनता को लूटने तथा भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने वाले इस नेता रूपी राक्षस का गोपाल चतुर्वेदी ने अपने व्यंग्यों में बड़ी ही बेबाकी से पर्दाफाश किया है।

4.1.4 पदलोलुपता एवं चमचागिरी

स्वातंत्र्योत्तर काल के बाद नेता की पद लोलुपता निरंतर बढ़ती गयी। पद प्राप्त करने और उसे बचाये रखने के लिए वह प्रतिष्ठित लोगों की चमचागिरी करने में भी नहीं हिचकिचाता है। उसका लक्ष्य सत्ता प्राप्त करना है। उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वह सभी प्रकार की तरकीबों को अपनाता है। गोपाल जी ऐसे कुर्सी पाने की आशा रखने वाले नेताओं पर खूब जमकर व्यंग्य करते हैं।

कुर्सी के प्रति अधिक लगाव ही व्यक्ति को नेता बनाता है। नेता बनकर जनता की कठिनाईयों को दूर करने की बात तो अब किताबी पन्नों में दर्ज दूर के आदर्शों की बात रह गई है। आजादी के बाद नेताओं में देश प्रेम की भावना केवल सत्ता की लालसा से जुड़ी हुई नज़र आने लगी है-"आजादी के बाद अपना देश 'नेहरू के बाद कौन' के सवाल में उलझा रहा। फिर उनकी शहादत ने पाँच साल गद्दी संभाली। प्रचार था कि उनकी याद का वारिस हारा तो सिर्फ प्रलय और विध्वंस संभव है। परिवार चला गया मुल्क बरकरार है।''[31] अर्थात् आजादी के बाद लोकतंत्र होने के बावजूद भी राजनीति में परिवारवाद चला। कांग्रेस पार्टी में नेहरू प्रधानमंत्री बने उसके बाद उनकी बेटी इन्दिरा जी, इन्दिरा जी के पश्चात् राजीव

गाँधी और राजीव गाँधी के बाद वर्तमान समय में राहुल और सोनिया गाँधी कांग्रेस पार्टी की सत्ता संभाले हुए है।

आज समाज में व्यक्ति का नहीं कुर्सी का सम्मान है। जब तक व्यक्ति के स्थान पर कुर्सी का महत्त्व रहेगा, समाज में भ्रष्टाचार ही बढ़ेगा। प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान पाने की इच्छा होती है उसके लिए वह प्रयास भी करता है। जब तक कुर्सी का सम्मान है तब तक भ्रष्ट और सत्-असत् सभी तरीकों का प्रयोग करके व्यक्ति उसे प्राप्त करने की लालसा रखता है। गोपाल जी ने कुर्सी लोलुपता पर बड़ा ही सटीक व्यंग्य करते हुए कहा है- ''उसके बाद चमचे भी बुद्धि की श्रेष्ठता में यकीन रखने लगे। चमचे अहसान फरामोश नहीं हैं। वे आज भी अपने धंधें में जवाहरलाल और उनके खानदान के योगदान का अहसान मानते हैं। यह बुद्धि की भावना पर विजय का प्रभाव है कि आज के चमचे किसी व्यक्ति की चमचागिरी सिर्फ उसकी कुर्सी की खातिर करते हैं। वह उस कुर्सी से हटा और दूसरा आया तो वे उसके चमचे हो जाते हैं। यानी वे सिर्फ कुर्सी के चमचे हैं किसी विशेष के नहीं।''[32]

व्यंग्यकार शरद जोशी ने भी कुर्सीनामा नामक लेख में कुर्सी पाने की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है कुर्सी का गुणगान करते हुए वे कहते हैं-''जिस व्यक्ति ने किसी का पहली बार निर्माण किया था वह यह नहीं जानता था कि वह क्या गज़ब ढाएगा इस देश पर। वह केवल एक बैठने की सुविधा ही नहीं रही, एक समूची मानसिकता बन गयी। आदमी से नीचे होने के बजाए आदमी के सिर चढ़ गयी। कुर्सी के बिना आदमी भयंकर असुरक्षा से घिर जाता है। कुर्सी उसका किला है, शस्त्र है, शक्ति है। डाल पर बैठे बिना जैसे कोयल का सुर नहीं लगता, उसी तरह कुर्सी पर बैठे बिना, मनुष्य की प्रतिभा शून्य हो जाती है। जिसके पास स्वंय नहीं है, वह किसी कुर्सी वाले का सहारा खोजता है। कुर्सी आत्मबल है बाहुबल है और इस देश में अर्थबल भी।.....कुर्सी परमगति, कुर्सी बिन दुर्गति। कुर्सी अंतिम सद्गति। रामहू कुर्सी, रावणाय कुर्सी। कुर्सी क्षेत्रम् कुरूक्षेत्रम्। कुर्सी कुरूस्यात् कुर्सी कुर्यस्ताम्।''[33] इस प्रकार कुर्सी मनुष्य के

लिए सब कुछ हो गई है। आज सभी कुर्सी के पीछे भाग रहे है। कुर्सी से ही मनुष्य का मान-सम्मान है और जब वही कुर्सी छिन जाए तो वह बेकार का आदमी हो जाता है लोग उससे कतराने लगते है। बरसाने लाल चतुर्वेदी ने भी कुर्सी के महत्त्व को बताते हुए कहा है- "देवरजी, कुर्सी की चाट एक बार लग जाए फिर उसी की याद आती है और किसी काम में मन नहीं लगता। कुर्सी किसी की नहीं रही ये बड़ी बेवफा है।"[34] इस प्रकार आज का नेता कुर्सी पाने या उससे चिपके रहने की, उस पर जमकर बैठने की कोशिश में लगा हुआ है और इसी तीव्र इच्छा के कारण ही कुर्सी छिन जाने पर उसके दुःख का पार नहीं रहता है।

जनसेवा का दिखावा करने वाले नेता के मन में तो केवल 'कुर्सी' समाई होती है। कुर्सी को हथियाने के लिए लालायित ये नेता अपनी इस महत्त्वकांक्षा की पूर्ति के लिए कुछ भी करने को तत्पर रहते हैं। गोपाल जी कुर्सी की इसी लोकप्रियता का वर्णन करते हुए कहते हैं-"सरकारी दफ्तरों में कुर्सी-कुर्सी काफी लोकप्रिय खेल है। राजनीति में यही खेल जनसेवा के नाम पर खेला जाता है। राजनीति के कुर्सी कुर्सी और क्रिकेट में सबसे बड़ी समानता दोनों का अनिश्चय का खेल होना है। विधायक का सांसद बनकर अर्धशतक लगाने वाले और कभी मंत्री का पद हथियाकर शतक लगाने वाले प्रतिभाशाली खिलाड़ी चुनाव के दौरान ज़ीरों पर उड़ जाते हैं।"[35] इस प्रकार कुर्सी तक पहुँचने का जरिया आम जनता से होकर जाता है। आम जनता भी आज समझदार हो गई है वह बड़े-बड़े नेताओं को अपने वोट की ताकत से धराशायी कर देती है और नेता को कुर्सी से वंचित भी।

कुर्सी की महत्ता सदैव से ही रही है। कुर्सी के लिए भाई ने भाई को मारा है तो वहीं कुर्सी पाने के लिए छोटा आदमी बड़े आदमी की चापलूसी में लगा रहता है और जब उसे कुर्सी मिल जाती है तो वह उसी से चिपक जाता है उसे छोड़ना नहीं चाहता है। परसाईं के शब्दों में -"पद की कुसिर्यों में गीली गोंद लगी रहती है जो बैठता है चिपक जाता है।"[36] अर्थात् एक बार किसी व्यक्ति को कुर्सी मिल जाने पर वह उस पर किसी दूसरे को बैठने का मौका ही नहीं देता है।

राजनीति में कुर्सी के साथ-साथ चमचागिरी का भी विशेष महत्त्व है। कुर्सी प्राप्त करने का रास्ता चमचागिरी से होकर ही जाता है अतः राजनीति में आने के लिए पढ़े-लिखे होना आवश्यक नहीं है। नेता का चमचा बनने व्यक्ति को चाटुकारिता, बातें बनाना आना चाहिए। चमचागिरी भी सभी के बस की बात नहीं होती है चमचा बनने के गुण व्यक्ति में होने चाहिए गोपाल जी इसी संदर्भ में व्यंग्य करते हुए कहते हैं- "हमने उनसे प्रार्थना की कि वह हमें अपना चमचा ही बना लें। उन्होंने हमारी निजी जन्मपत्री की जानकारी ली-

आप पढ़े-लिखे हैं?

जी हाँ! लिटरेचर से एम.ए. किया है। हमने सीना फुलाकर उत्तर दिया।

झुग्गी-झोपड़ी के लोगों पर आपका कोई असर है?

जी नहीं।

आप किसी ठेकेदार के आदमी हैं?

जी नहीं

अपने रास्ते लगिए। क्यों वक्त बर्बाद कर रहे हैं?

हम भी आपकी तरह नेताजी की सेवा करना चाहते हैं।

न आपके पास झुग्गियों के वोट हैं। न ठेके के नोट हैं। तिस पर आप

डिग्री याफ़्ता हैं। नेताजी राजनीति करते हैं, कोई अनाथ आश्रम नहीं चला

रहे हैं।

उन्होंने जबरन हमें विदा कर दिया।''[37]

इस प्रकार नेता के आस पास जो चमचे होते हैं वे भी बिना काम के नहीं होते हैं। नेता उन्हें ही अपना चमचा बनाते हैं जो उन्हें या तो चुनाव में वोट दिलवा सके या फिर नोटों से नेता की जेब भर सके।

नेता पढ़े-लिखे लोगों को अपना कार्यकत्र्ता या चमचा बनाने से कतराते हैं क्योंकि वे जानतें हैं कि यदि कार्यकर्त्ता पढ़ा लिखा व्यक्ति होगा तो वह नेता जी की मीठी-मीठी बातों में नहीं आएगा। वह आदर्शवादिता और यथार्थवादिता में विश्वास रखने वाला होगा और वह नेता जी की हाँ में हाँ नहीं मिलाएगा। ऐसे लोगों के पार्टी में रहने से नेता जी की मान प्रतिष्ठा में कमी आने लगेगी। चुनाव के समय सही कार्यकत्र्ताओं का चयन करना बड़ा ही मुश्किल हो जाता है-''दलों को फिर भी दिक्कत है। सही कार्यकत्र्ताओं के अभाव हैं। पढ़ लिखकर लोगों के जिस्म में आदर्शों का जहर घुल जाता है। नेता प्रति निष्ठा संदेहास्पदा हो जाती है। दुम दें भी तो हिला नहीं पाते। महंगाई को भ्रष्टाचार से जोड़ते है। गांधी की बात करते हैं। लुब्बे-लुबाब यह कि जम्हूरियत के उसूल नहीं मानतें।''[38] इस प्रकार पार्टी ऐसे कार्यकर्त्ताओं की तलाश में रहते हैं जो नेता की हाँ में हाँ मिलाना जानते हो। नेता की चापलूसी करना उन्हें आता हो।

पार्टी कार्यकर्त्ता बनने के लिए पार्टी द्वारा कराये गए इंटरव्यू में किस प्रकार के योग्य व्यक्ति का चयन होता है इस पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहतें हैं-

''आप पढ़े-लिखे हैं?

पांच साल पहले बी.ए. किया था।

क्या करते हैं?

पैसे लेकर जरूरतमंदों की अर्जी लिखता हूँ। मुकदमों में पुलिस की ओर से गवाही देता हूँ। जनता के हित में खाने-पीने की दुकानों का माल चखकर उनके स्तर की निगरानी रखता हूँ। सर इसी तरह समाज सेवा के कामों में वक्त गुज़र जाता है।

आप किस वाद में यकीन रखते हैं।

जो भी आपका वाद हो सर

भ्रष्टाचार के बारे में आपका क्या ख्याल है?

यही तो आज का आचार-विचार और समय की पुकार है सर! पैसा नहीं जोड़ा तो पार्टी चुनाव कैसे लड़ेगी? अगर चुनाव नहीं हुए तो प्रजातंत्र कैसे चलेगा, लोकतंत्र के लिए भ्रष्टाचार लाज़मी है सर!

देश का नेता कैसा हो। बड़े नेता ने पूछा।

बिल्कुल आपके जैसा हो। प्रत्याशी ने उत्तर दिया।

उसके जाने के बाद नेता ने कम्प्यूटर का बटन दबाया। अट्टाहास गूँजा। यह बिन टे[a]निंग के परफैक्ट है इसे नियुक्ति पत्र दे दें। बड़े नेता ने छोटे नेता को आदेश दिया।''[39]

आज ऐसे व्यक्तियों का ही बोलबाला है जो नेता की जी हजूरी करना जानता हो। अपनी वाक्पटुता से नेता को खुश करना जानता हो। और जो खुशामद करना जानता हो। इस प्रकार के लोग ही इस देश में विकास कर पाते हैं।

आज वोटर से लेकर मंत्री तक सभी चमचें है। बरसाने लाल चतुर्वेदी भी इस चमचागिरी पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं-"मंत्री बनने के लिए चमचागिरी का उस्ताद होना आवश्यक है। ज्यों-ज्यों बेरोजगारी बढ़ेगी, राजनीति का धंधा ही सबको खाप सकेगा। चाहे गाँव में रहने वाला हो अथवा शहर में, इस

रोजगार की संभावनाएं बराबर बनी रहेंगी और यदि व्यक्ति चमचागिरी में माहिर होगा तो ग्राम पंचायत से शुरू करके जल्द मंत्री पद प्राप्त कर लेगा।''[40] इसमें लेखक ने राजनीति को रोजगार मानने पर करारा व्यंग्य किया है।

सरकार में चाटूकारों का ही बोलबाला है। जब समाज में चाटुकारिता बढ़ जाती है और सत्परामर्श देने वाला कोई नहीं रह जाता है तब सरकार का पतन निश्चित होता है। गोपाल जी ने इसका बड़ा ही जीवंत और यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है- ''चमचातंत्र में राजनीतिक दलों का पूरा संगठन चमचागिरी पर आधारित है। ऐसा नहीं है कि जाति, रिश्तेदारी और संप्रदाय की भूमिका पदों के बंटवारे में अपना महत्त्व खो बैठी है। पर पुत्र, भाई, साले, भतीजे भी वही आगे आते हैं जिनका चरित्र चमचा प्रधान है।''[41] अतः चमचागिरी करना भी आसान कार्य नहीं है। लोग भले ये कहे कि नेता अपने भाई भतीजे आदि को तवज्जों देते हैं लेकिन नेता भी अपने उन भाई भतीजों पर ही ध्यान देते हैं जो चमचागिरी में उस्ताद हो।

इस प्रकार प्रजातंत्र में पद और कुर्सी पाने की लालसा मनुष्य में चमचागिरी करने के लिए उकसाती है आम जनता हो या छोटा नेता सभी को यह पता है कि बिना चमचागिरी के कुर्सी प्राप्त नहीं की जा सकती और इसी कुर्सी की, पद की लालसा के लिए ये लोग चमचागिरी करने में ज़रा भी गुरेज नहीं करते। इसी चमचागिरी के कारण वे उच्च पद पर असीन भी हो जाते हैं।

4.1.5 दलबदल का खेल

राजनीतिक परिवेश में सबसे अधिक अस्थिरता का वातावरण दल-बदल की राजनीति ने उपस्थित किए हैं। इस दल बदल के कारण सरकार की स्थिति डावांडोल हो जाती है। मंत्री-विधायक सरकार के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पारित कराते हैं। सन1980 में इसी प्रकार 'जनता-सरकार' का पतन

हुआ। गोपाल जी ने दल-बदल विखण्डन पर तीखा व्यंग्य करते हुए कहा है-''लो प्यारे हमारे बंधुआ एम. पी. आपके साथ हैं। बना लो सरकार, थोड़े दिन बाद इसको हटाओ उसको बैठाओ की शर्ते लगाकर फरमाते हैं आपका टर्न हो गया है हमें भी तो मौका दें।''[42] इस प्रकार नेता दल बदल कर कभी सरकार बनाते हैं तो कभी सरकार गिराते हैं। पर ऐसा वे तभी करते हैं जब इसमें उनका अपना कोई लाभ हो।

इन दलबदलुओं के संदर्भ में हरिशंकर परसाई भी दलबदल करने पर एक नेता के मुँह से सफाई दिलवाते हैं-''हर आदमी में मेरे जैसी फुरती नहीं है। देखिए न, मैंने जनता पार्टी बनायी। फिर मैं स्वतंत्र पार्टी में चला गया। फिर कांग्रेस में लौट गया। फिर मैं भारतीय क्रांति दल में चला गया। फिर भारतीय क्रांति दल से निकलकर जनता पार्टी बना ली। मेरे लिए राजनीतिक दल अण्डरवियर है। ज्यादा दिन एक ही को नहीं पहनता क्योंकि बदबू आने लगती है।''[43] दल बदलने वाले नेताओं के विषय में लतीफ घोंघों भी व्यंग्य करते हैं-"दल बदलना उनके लिए सिर्फ टोपी बदलना है।''[44]

इसी संदर्भ में रवींद्रनाथ त्यागी जी 'टिड्डी' जैसे जीव को लेकर राजनीतिज्ञों के दल बदलू स्वभाव तथा अवसरवादिता पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं-''इसके पर इस रंग के होते हैं कि मौके के अनुसार वह किसी भी पेड़ के पत्तों में आसानी से छिप सकती है और दलबदल करने की उसकी यह प्रवृत्ति उसे एक विशेष प्रकार की राजनीतिक मान्यता प्रदान करती है। उसका रंग भी पास पड़ोस के अनुरूप बदलता रहता है। इस कीड़े में एक बड़ा राष्ट्रीय गुण यह भी है कि अवसर के अनुसार यह बाकी कीड़ों को खा जाता है।''[45]

वर्तमान युग में राजनीति में पद प्राप्त करने के लिए दल बदलना एक आम बात हो गई है। नेता जहाँ देखते हैं कि उन्हें इस पार्टी में रहने पर ज्यादा फायदा होगा बस वे तुरंत दल बदल लेते हैं। ऐसे अवसरवादी नेताओं पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहते हैं-"राजनीति में दमदार नेता वह है जो राजनीति

की सुविधा के अनुसार लगातार दल बदलने की कुव्वत रखता हो।''[46] अर्थात् राजनीति में वही नेता टिक सकता है या आगे बढ़ सकता है जो अवसर के अनुरूप दल बदलने में माहिर हो।

आज दल बदलने के पीछे सिद्धांत नहीं वरन् धन और पद का प्रलोभन है। दल बदल करते समय नेताओं को किंचित मात्र भी ग्लानि नहीं होती है। ये नेता आत्मा की आवाज़ के नाम पर दल बदल करते हैं जबकि यह वस्तुतः आत्मा की आवाज होती है। ऐसे नेताओं में गजब का आपसी सौहार्द होता है। यह एक दूसरे के पाले में अक्सर टहलते हुए चले आते हैं। इसी संदर्भ में एक कवि ने कहा था-

''आत्मा ने धरे

कई-कई चोले हैं-

हमने सिद्धांत नहीं

केवल दल बदले हैं।''[47]

इस प्रकार दल बदलना नेताओं के लिए फैशन सरीखा हो गया है। जिस दल में वे अपने भविष्य की बेहतर संभावना देखते हैं फट से उस दल में जाकर मिल जाते हैं। किंतु ध्यान देने योग्य बात यह है कि वह किसी भी दल में जाए उसका सिद्धांत नहीं बदलता है। जनता को लूटना, देश और जनता के विकास के नाम पर स्वंय का विकास करना इस प्रकार के उनके सारे सिद्धांत दल बदलने पर भी जस के तस बने रहते हैं। वे राजनीति में आकर दल बदल के माध्यम से अपने विकास की ओर अग्रसर रहते हैं।

इस प्रकार वर्तमान राजनीति में कुर्सी पाने के लिए दलबदल की प्रवृत्ति साधारण सी बात हो गयी है और इस प्रवृत्ति को जिस राजनीतिक दल ने सबसे अधिक प्रश्रय दिया, वह था कांग्रेस। कांग्रेस में सक्रिय विभिन्न प्रेशर ग्रुपों ने सत्ता हासिल करने के लिए यह खेल प्रारम्भ किया था किंतु सर्वव्याप्त इस

भ्रष्ट राजनीति से आज कोई भी पार्टी अछूती नहीं है। सिद्धांत के नाम पर दल बदलने का मजाकिया खेल नेताओं द्वारा खूब खेला जा रहा है। उनका मतलब केवल सत्ता पाने से रहता है। इस तरह सत्ता पाने के बाद नेता जनता के लिए, जनता के नाम पर जनता का शोषण करता रहता है।

गोपाल चतुर्वेदी राजनीतिक-यथार्थ की बहुत गहरी समझ तथा निकट पहचान लेकर हमारे सामने आते हैं। राजनीतिक व्यवस्था के प्रति उनमें गहरा असंतोष है जिसकी अभिव्यक्ति राजनीतिक दलों, नेताओं, प्रजातांत्रिक व्यवस्था तथा पद लालसा पर तीखे व्यंग्य प्रहारों के रूप में हुई है। गोपाल जी ने देश की राजनीतिक व्यवस्था के जन विरोधी चरित्र को उघाड़ते हुए जनता और शासन के बीच निरंतर बढ़ती दूरी, राजनीतिक दलों की सिद्धांतहीनता और विचारशून्यता राजनीतिज्ञों के दोहरे चरित्र चुनाव प्रणाली के भ्रष्ट स्वरूप राजनीतिक विसंगतियों एवं विकृतियों को अपने व्यंग्य प्रहार का लक्ष्य बनाया है।

वास्तव में राजनीति में परामर्श की परत के नीचे स्वार्थ छिपा रहता है। जनता के कल्याण की योजनाएं सरकार बनाती तो है लेकिन उससे बू आती है स्वार्थ की। गोपाल जी ने अपने व्यंग्यों के माध्यम से ऐसे व्यक्तियों का पर्दाफाश किया है जो कल्याण के नाम पर केवल अपना और अपने परिवार का कल्याण करते है। स्वंय को जनता का रक्षक कहने वाले ये नेता जनता के भक्षक के रूप में दिखाई देते हैं। नैतिकता और राजनीति के नाम पर ये जनता से कूटनीति करते है। गोपाल ने समाज सेवा और राजनीति के नाम पर नेताओं की इस संवेदनहीनता से पाठकों को रूबरू करने का प्रयास किया है। इनके राजनीतिक व्यंग्यों को पढ़कर जनता में आक्रोश पैदा होता है। इनके व्यंग्यों के प्रहार कहीं न कहीं बदलाव का तिलिस्म पैदा करने का प्रयास करते हैं।

4.2 प्रशासन संबंधी व्यंग्यों में भ्रष्टाचार का उद्घाटन

सार्वजनिक और निजी, प्रशासन के दो क्षेत्रों में सार्वजनिक प्रशासन क्षेत्र सरकारी तंत्र के सीधे नियंत्रण में होता है। स्वभावतः सरकारी तंत्र की समस्त अच्छाईयाँ, बुराईयाँ सार्वजनिक प्रशासन के क्षेत्र में स्वमेव ही उतर आती हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में सरकारी और राजनीतिक क्षेत्रों में विकसित हुई विकृतियों का प्रभाव सार्वजनिक प्रशासनिक क्षेत्र पर भी पड़ा है। अधिकारियों में अधिकार-चेतना जिस अनुपात में विकसित हुई है उसी अनुपात में दायित्व चेतना लुप्त हो गई है। भ्रष्टाचार, भाईभतीजावाद, अफसरशाही, गैरजिम्मेदारी आदि बढ़ गई है लेकिन विडम्बना तब पैदा हो जाती है जब इसको सार्वजनिक सेवा का क्षेत्र घोषित किया जाता है। जनसेवा, न्याय, निष्पक्षता, ईमानदारी के नाम पर ठीक उल्टा आचरण किया जाता है। व्यंग्यकार अपनी व्यंग्य लेखनी से इसी अंतर्विरोध का उद्घाटन करते हुए उस पर लगातार चोट करता जाता है। अगर नेता राजनीतिक क्षेत्र का खलनायक है तो अफसर प्रशासनिक क्षेत्र का। अफसर का खलनायक बनना नेता से अधिक घातक है क्योंकि नेता और उसकी पार्टी का तंत्र तो परिवर्तनशील होता है जबकि प्रशासन का तंत्र स्थिर रहने वाली व्यवस्था है। इस कारण प्रशासनिक क्षेत्र में स्थायित्व आ जाने का खतरा पैदा हो जाता है। आज सार्वजनिक नैतिकता जैसी कोई चीज़ प्रशासनिक क्षेत्र में नहीं रह गई है। प्रशासनिक कार्यालयों का वातावरण कलुषित हो गया है। सिफारिश, चापलूसी, खुशामद, रिश्वत आदि पूरे प्रशासनिक तंत्र का हिस्सा बन चुके हैं। गोपाल चतुर्वेदी भी प्रशासनिक अधिकारी के रूप में प्रशासन का हिस्सा रहे हैं। कन्हैयालाल नंदन के शब्दों में, "अफसरों केबीच रहकर अफसरी का सारा तामझाम गोपाल को अच्छी तरह मालूम है। अपनी लेखनी से गोपाल उसकी बखिया भी उधेड़ते आ रहे हैं। लेकिन मुझे भी ताज्जुब होता रहा है और भारत के पूर्व महालेखा परीक्षक एवं नियंत्रक त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी को भी कि गोपाल के लिखे का उनके सहयोगी ने आज तक बुरा क्यों नहीं माना। मैंने उनसे कई बार हँसते-हँसते कहा भी है कि तुम्हें लेने के देने पड़ जायेंगे। गोपाल ने सिर्फ इतना कहा अरे भाई साहब की बात जब

जो आयेगा देखा जायेगा लेकिन लिखने में बेईमानी क्यों करना''[48] प्रशासन में रहते हुए इन्होंने चपरासी से लेकर अफ़सर तक के क्रिया कलापों को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा और जाना है और बड़ी ही बेबाकी के साथ साहित्य में इसे व्यंग्य के रूप में उतारा है। दफ्तर संस्कृति से संबंधित इनके व्यंग्यों को पढ़ने पर पाठक को ऐसा प्रतीत होता है कि यह उसी के साथ घटित हुई कोई घटना है। प्रशासनिक भ्रष्टाचार संबंधी जिस प्रकार के व्यंग्य इनके साहित्य में देखने को मिलते है वैसे अन्यत्र कहीं नहीं।

4.2.1 अफसरशाही

प्रशासनिक क्षेत्र की विकृतियों अथवा उपयुक्त कार्यवाही की असफलताओं के लिए पूर्ण रूप से अफसर ही जिम्मेदार होता है। स्वहित की भावना ने उसको उचितानुचित सब कुछ करने के लिए बाध्य कर दिया है। ''समाज में मुखौटा संस्कृति का एकाध अपवाद संभव है, सरकार में यह कतई नामुमकिन है। यहाँ के सब पेशेवर सफेदपोश चोर-डाकू सज्जनता के अभिनय में निष्णात हैं। यह तब है जबकि आज के साधु में सज्जन नहीं रहे हैं।''[49] अर्थात् शासन में सभी अफसर दो रूप में हैं जो ऊपर से तो साधु नज़र आते हैं सज्जन दिखते है किंतु किसी चोर से कम नहीं होते हैं।

आज प्रशासन में इतना भ्रष्टाचार है कि रुपयों का चढ़ावा चढ़ाए बिना किसी भी साधारण व्यक्ति का कोई काम नहीं हो सकता है। कुछ अफसर तो ऐसे हैं जो अपने से नीचे तबके के लिए कुछ भी नहीं छोड़ते सब अकेले ही हज़म कर जाते हैं गोपाल जी ऐसे ही अफसरों के विषय में बताते हुए कहते हैं- ''साहब ऐसे वैसे नहीं हैं। उनके एक जूनियर सहयोगी बताते हैं कि साहब का जीवन-दर्शन बहुत ही सीधा और सरल रहा है। उनसे उसी मुंह लगे प्रिय पात्र ने कहा, 'सर! आप तो शेर हैं। शेर जब भी शिकार कर अपना पेट भरता है तो कुछ छीछड़े छोड़ देता है। सर! हम तो आपकी रियाया हैं कुछ हम भी कमा लें। बेटी का दहेज निबटे। आपके गुण गाएँगे। साहब ने उसे प्यार से समझाया कि वह शेर नहीं अजगर है। पूरा

का पूरा शिकार हड्डी समेत निगल जाते हैं। तभी तो हमने आपसे कहा था कि साहब ऐसे वैसे नहीं खास हैं।''[50]

दफ्तर में यदि कोई व्यक्ति किसी प्रशासनिक कार्य के लिए जाता है उसे फाइलों में उलझा दिया जाता है। उसे दफ्तर के रोज-रोज चक्कर काटने पड़ते रहते हैं। लेकिन अफसर कम कमीशन लेकर भी अपने मन मुताबिक ही करता है गोपाल जी इसी फाइलबाजी पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं-''सरकारी अफसर कर्मचारी तो मुल्क के स्थायी सेवक हैं। वे पूरी ताकत और कूवत से देश की सेवा करते हैं। फाइलें चलाते हैं। योजनाएं बनाते हैं। उनका काम ही कागज़ी कार्यवाही से इंसान की खिदमत करना है। हर दफ्तर इस लक्ष्य का गवाह है, उनकी कामयाबी इस बात से जाहिर है कि हमारी आबादी के मुकाबले, फाइलों की तादाद कहीं ज्यादा है।''[51]

आज अफसर काम के नाम पर केवल आराम करता है। योजनाओं के नाम पर जनता को लूटता है। दौरे के नाम पर विदेश भ्रमण कर केवल और केवल आराम करता है। अफसरों की इसी लूट को व्यंग्य रूप में गोपाल जी इस प्रकार प्रकट करते हैं ''आखिर नेता, मंत्री, अफसर भी तो इंसान हैं। अगर वे खुद प्यासे हैं तो दूसरों की प्यास कैसे बुझाऐंगे? जनता सिर्फ इलैक्शन तक जनता है, जनार्दन है, हाड-मांस का इंसान है। उसके बाद वह सिर्फ आँकड़ा है, फाइलें है, शिकायत है, याचक है, सिरदर्द है। लीडर और जनता में यही तो फर्क है। मंत्री अफसर तो चैबीसों घंटो के सेवक हैं। लंबी तानकर सेवा करें या दौरे पर जाकर। कभी देश में जगह-जगह जाना पड़ता है, कभी विदेश में।''[52] ये भ्रष्ट अफसर जनता को लूटकर स्वंय उसी के पैसों से विदेश घूमते हैं और ऐशो आराम करते हैं।

इन दिनों प्रशासन में कमीशन खोरी अपने चरम पर है बिना कमीशन के कोई सरकारी नौकर चाहे वह चपरासी हो या अफसर आम आदमी का कोई काम नहीं करता है। यहाँ तक की योजनाओं के नाम पर, देश के विकास के नाम पर बनाए जा रहे बड़े-बड़े प्रोजेक्ट में ऊपर से लेकर नीचे तक सिर्फ कमीशन

खोरी ही है- आततायी के अनुसार विकास और कमीशन राम-लक्ष्मण की जोड़ी है। अगर कमीशन है तो विकास है। कमीशन नहीं है तो विकास भी नहीं है। फिलहाल आजकल कमीशन काल का संक्रमण समय है। इसी वजह से देश में हो हल्ला है। जनता को शिकायत है कि कमीशन की दरों में घनघोर असमानता है। यह कहाँ का इंसाफ है कि दरे खानेवाले की मर्जी से घटे-बढ़े। एक ही काम के कोई पचास वसूले कोई पाँच सौ। हमें निराश नहीं होना है। दरों की विविधता कमीशन की व्यापक एकरूपता की सूचक है।''[53]

इसी प्रकार सरकारी तंत्र में प्रमोशन पाने के लिए भी जी हूजूरी करनी पड़ती है। जो लोग चाटुकारिता जानते है ऑफिस में कोई भी काम नहीं करते हैं तब भी उनका प्रमोशन हो जाता है किंतु जो लोग दफ्तर का काम पूरी मेहनत व लगन से करते हैं वे प्रमोशन के लिए तरसते हैं। प्रमोशन पाने की सलाह देते हुए गोपाल जी कहते हैं-''आप दफ्तर में मेहनत से काम करते हैं'' वर्मा सर ने सवाल किया। मैंने हामी भरी फिर आपका प्रमोशन क्यों हो! जाहिर है कि आप बिना पदोन्नति की स्थिति से संतुष्ट है। सरकार क्यों आप पर अधिक पैसा खर्च करे,'' उन्होंने हमें पाठ पढ़ाया। हमने उनसे अपील की कि हमें इस अंधेरे से उबारें वर्मा सर का अगला प्रश्न था, आप अपने साहब के यहाँ आते जाते हैं।''

सर! रोज दस घण्टे दफ्तर आने-जाने और काम करने में निकल जाते हैं। फिर घर के राशन-पानी और बच्चों की पढ़ाई में वक्त लग जाता है।

मेहमानों की खातिर तवज्जो अलग। दोस्त-रिश्तेदारों से महीनों मुलाकात नहीं होती। कैसे जाएँ साहब के घर हमने अपनी विवशता बयान की।

'सर' ने निर्णय सुनाया कि हम उल्टी गंगा बहा रहे हैं। साहब को सलामी अनिवार्य है जबकि सरकारी काम ऐच्छिक है। आप पीएच.डी. तकनीक प्रमोशन के लिए लगाइए, उन्होंने आदेश दिया।''[54]

इस प्रकार प्रशासन में भी प्रमोशन पाने के लिए चापलूसी का विशेष स्थान है और जो व्यक्ति इस चाटुकारिता धर्म से वंचित रहता है। वह प्रमोशन से भी वंचित रह जाता है।

नेता की तरह सरकारी कर्मचारियों के व्यवहार में तथा राजनीति की तरह प्रशासनिक कामकाज के निबटारे में पर्याप्त विसंगतियां दिखाई देती हैं। एक अफसर होने के कारण जो विसंगतियां जो स्वार्थपरता सरकारी कार्यालयों में विकसित हो रही है उसे देखते हुए चतुर्वेदी जी कहते हैं-"भारत सरकार के किसी आर्थिक मंत्रालय के उपसचिव पद पर काम करने के यही कुछ तो फायदे हैं। होली-दीवाली पर भेंट उपहार और नये वर्ष के अवसर पर कैलेंडर डायरी। लंच-डिनर तो खैर होते ही रहते हैं।''[55]

वर्तमान समय में भ्रष्टाचार का बोलबाला हर जगह है नेता, मंत्री, अफसर, ठेकेदार सभी भ्रष्टाचार में सने हुए है। इन सब के भ्रष्टाचार का उद्घाटन करते हुए गोपाल चतुर्वेदी कहते हैं-''जैसा सब जानते हैं कि आधुनिक भारत के निर्माण में औरों के अलावा लीडर, अफसर और ठेकेदारों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भ्रष्टाचार की नींव पर बनी गिरती इमारतें टकते पुल, चेचक ग्रस्त सड़के जनता को ठिकाने लगाने को प्रस्तुत प्रशासन, अतीत के राजाओं से टक्कर लेते सामंती मंत्री जनता को ठेंगा दिखाते दरबारी (जिन्हें जनतांत्रिक व्यवस्था में विधायक या सासंद भी कहते हैं) इसके जीते जागते उदाहरण हैं।''[56] हरिशंकर परसाई भी देश में विकास के नाम पर हो रहे घटिया कंस्ट्रक्शन और ऊपर से नीचे तक हो रही कमीशनखोरी पर व्यंग्य करते हैं-''यह है राष्ट्रीय विकास का पौधा। इसके आस-पास तमाम योजनाओं के चबूतरे बनाए गए। जैसे ब्लाॅकडेवलपमेंट, सहकारी आंदोलन, विभिन्न प्रोजेक्ट। इसकी रक्षा के लिए चैकीदार खड़े हो गए यानी बड़े अफसर मंत्री और नेता।.....साधो, विकास के पौधे को इस तरह चरा जा रहा है। तुम देखते हो कि ब्लाॅक डेवलपमेंट अफसर की जीप 10 मील दूर पान खाने आती है। आधे मील सड़क बनावाने का खर्चा दो लाख रुपया है। योजना का सामान उठाकर बाजार में बिकता है। नया पुल पहली बरसात में ही बैठ जाता है, इमारत बनते ही तिड़क जाती है। बांध की दीवार टूट जाती है और

करोड़ों पानी में बह जाते हैं। सैकड़ों टन गल्ला सरकारी गोदाम में सड़ जाता है। लाख रुपये की संस्था के उद्घाटन में दो लाख रुपये लग जाते हैं।''[57] इस प्रकार भारत निर्माण के नाम पर नेता और अफ़सर दानों ही कमीशन खाते हैं। ठेकेदार भी घटिय क्वालिटी के सामानों का प्रयोग करके बिल्डिंग, सड़कों, पुल आदि का निर्माण करते हैं। करोड़ों का काम लाखों में करके बाकी बचे सारे पैसों को वह डकार जाता है निर्माण होने के बाद वह चाहे साल भर चले या छः महीने इससे ठेकेदार, अफसर, नेता को क्या लेना देना उनका काम तो निर्माण करवाना था सो हो गया।

इस प्रकार प्रशासन में सरकारी अधिकारियों की मनमानी ने प्रशासन को कमजोर बना दिया है। स्वतंत्रता के पश्चात् धीरे-धीरे प्रशासनिक कार्यों में घूसखोरी को बढ़ावा मिलने लगा। अधिकारी प्रशासन में फैले भ्रष्टाचार को रोकने की बजाए, उसी के द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धि का प्रयास करने लगे। देश में विकास को दिखाने के लिए अक्सर विविध प्रदर्शनियों का आयोजन होने लगा, लेकिन इससे देश और उसकी जनता को नहीं अफसरों को ही लाभ हुआ। आज अफसर अपने पद और पैसे के मद में इतने चूर हो चुके हैं कि वे बड़ें-बुजुर्गों की इज्जत करना भी भूल गए हैं। यहाँ तक कि पद और पैसा मिलने के बाद वे अपने माता पिता को ही गंवार समझने लगते हैं और किसी बड़े अफसर से उन्हें मिलाने में झिझक महसूस करते हैं। पद को प्राप्त कर लेने के बाद लोगों में मानवीय संवेदना समाप्त हो जाती है। अफसरों द्वारा किए जा रहे इसी प्रकार के भ्रष्टाचार एवं संवेदनहीनता को गोपाल जी ने जनता के समक्ष व्यंग्य रूप में प्रस्तुत किया है।

4.2.2 निठल्लापन

शासकीय कार्यालय अपने निठल्लेपन और गैर जिम्मेदाराना कार्यों के पर्याय बन गए हैं। धांधली और अंधेरगर्दी का आलम यह है कि जनसेवा के केंद्र आम जनता की नफ़रत और घृणा का पात्र बन गए हैं। गोपाल चतुर्वेदी का व्यंग्य संग्रह ''फाइल पढ़ि पढ़ि'' दफ्तर संस्कृति की इन तमाम छोटी-बड़ी

घटनाओं से पाठकों को रूबरू कराता है। सचिवालय का परिचय कराते हुए गोपाल जी कहते हैं- ''सचिवालय से पहले ही परिचय में हमारा खासा ज्ञानवर्धन हुआ। मसलन सचिवालय एक बेहद सुरक्षित क्षेत्र है और वहाँ हर आगंतुक को स्वाभाविक रूप से संभावित आतंकवादी माना जाता है। यहाँ के अधिकांश लोग कैण्टीन में काम और कमरे में आराम करते हैं। कर्मचारियों व अधिकारियों की मूल प्रवृत्ति मदद करने की है, पर किसी के पास समय नहीं रहता और कोई स्वंय नहीं रहा।''58 अर्थात् दफ्तर जाकर भी सरकारी कर्मचारी केवल आराम ही करते हैं।

सरकारी कर्मचारी कार्यालयों में कुछ काम नहीं करते हैं और जब छुट्टी आती है। तब घर पर कार्यालय के काम का रोना रोकर घर पर भी आराम ही करना चाहते हैं-"एक दिन छुट्टी का मिलता है खच्चर की तरह सरकारी लादनी के बाद। यदि इस छुट्टी में आराम कर रहा हूँ तो कौन सी आफत आ गयी। बड़ा काम करते हो दफ्तर में। अलावा गप्पों के और कैण्टीन के चक्करों के कुछ और किया होता तो आज देश की यह दशा होती। इससे चाय पी ली, इससे मिठाई झटकी ली, बस हो गया काम।''[59] इस प्रकार यह सरकारी कर्मचारी काम के नाम पर घर के लोगों तथा आम जनता दोनों को ही बेवकूफ बनाने का प्रयास करते है।

कार्यालय कहने को तो सुबह दस बजे से ही खुल जाता हैं किंतु जब कोई व्यक्ति वहाँ अपना काम करवाने आता है तो चपरासी उससे कहता है कि साहब मीटिंग में हैं और वह व्यक्ति घंटों मीटिंग खत्म होने का इंतजार करता रहता है-''हमें यहाँ के अधिकारी से मिलकर शिकायत करनी चाहिए, एक सुझाव आया। साहब के यहाँ जरूरी मीटिंग चल रही है। उनकी मेम साहब उनके पास बैठी हैं, चपरासी ने हमें इंतजार करने की सलाह दी और कमरे के बाहर जलती हुई लाल बत्ती की ओर इशारा किया। हमने देखा कि पूरे बरामदे में कतार से अफसरों के कमरे थे और पूरा बरामदा 'रेड लाइट एरिया' बना हुआ था। क्या यह सारे अधिकारी ऐसे ही मीटिंगों में व्यस्त हैं? मैंने जानना चाहा। ''और नहीं तो क्या! अभी मीटिंग चल

रही हैं और फिर लंच, फिर मीटिंग, उसने सिलसिला बताया। यहाँ काम कब होता है? हमने शंका जतायी। काम ही तो हो रहा है। बेचारे साहब लोग सुबह से आते हैं और देर रात घर जाते हैं उसने खैनी पीटी। और आप लोग क्या करते हैं? मैंने इस अनंत कार्य-व्यस्तता की प्रक्रिया में उसकी भूमिका दरियाफ्त की। हम भी सेवा करते हैं। कागज इधर-उधर ले जाते हैं। फिर ओवर टाइम। कभी चाय का इंतजाम, कभी कॉफी का।''[60] इस प्रकार मीटिंग के नाम पर कर्मचारी चाय कॉफी पीकर बीवियों के साथ अंदर केबिन में आराम करते हैं और आम जनता बाहर उनका इंतजार।

कार्यालय में आकर कर्मचारी काम में कम और खाने में ज्यादा ध्यान देते हैं-"मेरे लिए समोसा अकसर कागज में लिपटा आता है। मैं समोसा खाती हूँ, रामलाल जी कागज सहेजते हैं। कई बार दफ्तर से गायब महत्त्वपूर्ण पालिसी सर्कुलर समोसे में लिपटे चले आते हैं इस प्रकार सरकारी कार्यक्षेत्र का सामान्य ज्ञान बढ़ाने में भी समोसों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।''[61] इस प्रकार ऑफिस में कर्मचारियों का अधिकतर समय गपशप करने व समोसे खाने में ही बीत जाता है। काम तो वे नाम मात्र का ही करते हैं।

सरकारी कार्यालयों में एक बार नौकरी पा लेने तक ही लोगों में चुस्ती-फुरती होती है। नौकरी मिल जाने के बाद वे काम करें या न करें। सरकार से वे वेतन पाने के हकदार हो जाते है। काम न करने की इस प्रवृत्ति के विषय में गोपाल जी कहते हैं-"ऐसे वह रेल के दफ्तर में लिपिक थे, पर उनके परिचित जानते थे कि वहाँ वह सिर्फ हाजिरी लगाने का वेतन पाते हैं। दफ्तर की सीट पर अधिकतर उनकी टोपी ही उनकी उपस्थिति के प्रमाण स्वरूप पायी जाती है।''[62] अतः सरकारी कार्यालयों में सरकारी नौकर आकर सबसे पहले रजिस्टर पर अपनी उपस्थिति दर्ज कर देते हैं और उसके बाद घंटो अपनी कुर्सी पर नजर नहीं आते हैं। कभी वह दफ्तर की कैंटीन में होते हैं कभी पान की दुकान पर, कुर्सी पर तो वे ईद के चाँद जैसे ही बैठे नज़र आते हैं।

कार्यालय में कर्मचारी के यदि दर्शन हो भी जाएं तो वह काम नहीं करना चाहते हैं वे अपना काम कैसे दूसरे पर टाल देते हैं देखिए-‘‘यह मेरा कार्यक्षेत्र नहीं है। रिकार्ड रूम का सहायक छुट्टी पर है। तब तक आप लोग खुद कोशिश करें। अपने देश की यही तो दिक्कत है। सब हाथ पर हाथ धरे सरकार का मुँह ताकते रहते हैं। हमें अपनी मदद आप करना सीखना है। सरकार क्या-क्या करे। यही क्या कम किया था कि कभी फाइल खुलवा दी। अब आप चाहते हैं कि उसे तलाशें भी।’’[63]

सरकारी कर्मचारी फाइलों का प्रयोग तकिया के रूप में करते हैं जो उन्हें आराम देने में बड़ी ही मददगार साबित होती है ‘‘हमारे दफ्तर के पास सरकार ने एक पार्क बनवा रखा है। शायद इसलिए कि गुनगुनी धूप हो तो फाइल उठाओ और किसी बेंच पर उसका तकिया बनाकर आराम फरमाओ। सामने की क्यारी के खिले गुलाबों की भीनी गंध की मादकता का आनंद लो। इसी सुखद स्थिति में हमें लगा कि दफ्तर के समय इसमें लेटना देश के हित में है।’’[64]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सरकारी कार्यालयों में सरकारी कर्मचारी दफ्तर तो प्रतिदिन जाते है किंतु वे वहाँ कुछ काम नहीं करते। उनके दर्शन अधिकतर कैण्टीन में ही होते हैं। कुर्सी से वे सदैव नदारद रहते हैं। किसी दस मिनट के काम को करने में दस दिन लगा देते हैं। काम को टालने के लिए इनके पास अनेक बहाने होते हैं। कुल मिलाकर यदि देखा जाए तो अफसर से लेकर चपरासी तक ऑफिस में केवल आराम करने के लिए ही आते हैं। निठल्लेपन की इस प्रवृत्ति पर गोपाल जी ने सरकारी कर्मचारियों पर खूब व्यंग्य किए हैं। कर्मचारियों के निठल्लेपन की एक भी प्रवृत्ति गोपाल जी की कलम से छूट नहीं पाई है।

4.2.3 घूसखोरी

घूसखोरी या कमीशनखोरी प्रशासन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके बिना प्रशासन में कोई भी कार्य संभव नहीं है। बिना कमीशन के प्रशासन में कोई एक कागज भी इधर से उधर नहीं होता है। बाबू हो, चपरासी हो या अफसर बिना कमीशन के ये कोई भी कार्य नहीं करते हैं। सरकार का कोई भी प्रोजेक्ट हो, सड़के बननी हो, पुल, नालियाँ या गरीबों के लिए आवास सरकारी अधिकारी उन्हीं ठेकेदारों को टेंडर देते हैं जो उन्हें अधिक से अधिक कमीशन मुहैया करा सके। इस कमीशन में ऊपर से नीचे तक बंदरबाँट होती है। प्रशासन में इस कमीशन के खेल को अपने व्यंग्यों में गोपाल चतुर्वेदी ने बखूबी दर्शाया है- ''नई सड़क को बनना था, बन गई। मंत्री जी के मुबारक हाथों से उसका उद्घाटन भी हो गया। बस कुछ दिनों बाद ही गड्ढ़ो की दिक्कत पेश आने लगी। मोहल्ले के डॉक्टरसे कोई शिकायत करता तो वह उसे समझाते.....। आज मुल्क की हर सड़क चेचक के रोग का शिकार है। बड़ी संक्रामक प्रवृत्ति है चेचक की। आप बेकार ठेकेदार को दोष देते हैं। वह बेचारा क्या करे। ऊपर से नीचे तक सबको खुश करके सड़क का ठेका पाता है। बड़ी मेहनत कर उसे बनाता है। जैसे ही बनकर तैयार होती है कि सड़क को चेचक हो जाती है।''[65]

कमीशनखोरी की सरकारी कर्मचारियों को लत सी लग गयी है इसके बिना यह कोई भी कार्य पूरी लगन से नहीं कर पाते हैं। इनके अनुसार कमीशन से हाज़मा दुरुस्त रहता है-''कमीशन भक्षकों की मान्यता है, मुरगा-मीट या रोटी-सब्जी अपच की जनक है। बस थोड़ा-बहुत चुग लिया। कमीशन से भूख बढ़ती है, हाज़मा दुरुस्त रहता है। जितना खा सको खाओ आसानी से पचाओ।''[66]

सरकारी कर्मचारी कहते हैं कि आज के इस महँगाई भरे युग में पैसा सर्वस्व है। बिना पैसे के यहाँ कुछ नहीं होता है। सरकारी वेतन तो मात्र ऊँट के मुँह में जीरे केसमान है उससे घर खर्च चल पाना तो असंभव सी बात है। पैसे की इस महत्ता को बताते हुए गोपाल जी कहते हैं-

''गली-गली में शोर है,

पैसा ही सिरमौर है।''[67]

आधुनिक भारत में प्रशासन में अफसर ही कमीशन नहीं खाते बल्कि यहाँ न्याय व्यवस्था के रखवालों में भी कमीशन का रेट फिक्स है। आजकल जज भी इस कमीशनखोरी से अछूते नहीं रह गए हैं- ''उसे जज का कथन बर्दाश्त न हुआ, 'जज साहब मुँह मत खुलवाइए। नाना के आगे ननिहाल की बातें। नीचे से लेकर ऊपर तक जज कौन से दूध के धुले हैं? बेल पर छोड़ने तक की तो रेट फिक्स है। बस यह दीगर है कि प्रेस और पुलिस सबकी 'करेप्ट' की ताकत के कारण बख्श देते हैं। अब तो ऐसों के काले कारनामें भी सामने आने लगे हैं।''[68] इस प्रकार आज के समय में कानून के रक्षक न्याय करने वाले भी कमीशन लेकर कानून तोड़ रहे हैं। पैसे लेकर वे अपराधी के पक्ष में फैसला देकर उसे बाइज्जत बरी कर देते हैं और निरपराधी को सज़ा देते हैं।

आज के समय में जिसे भी अवसर मिलता है वह कमीशन खाने से नहीं चूकता। वर्तमान समय में पैसा सभी को प्यारा है चाहे वह अफसर हो, अधिकारी हो, समाजसेवक हो, नेता हो या बाबू-''वह तो हमें अब पता लगा है कि आज के सफेदपोश चोरों को अंधेरे की दरकार नहीं है। उनमें भरे उजाले में किसी को कंगाल करने की कूवत है। वह गौरैया ऐसे भोले भी नहीं हैं कि भूख की विवशता में एक दो दाने या रोटी के टुकड़े से काम चलाते। वह हर धंधे में अपना कमीशन खाते हैं। उनकी पहँुच हर क्षेत्र में है। कुछ का कमाऊ दायरा समाज सेवा है, कुछ की पैठ शासन में है। कुछ बिल्डर हैं, कुछ फिक्सर। कुछ ने रक्षा सौदे में महारत हासिल की है। सब में पैसे खाने का समान तत्त्व है। सब खाऊ बिरादरी के माननीय सदस्य हैं।''[69] अर्थात् आज के इस युग में मानवीयता समाप्त सी हो गई है। स्वयं को समाजसेवक बताने वाले भी कमीशनखोर हैं आज के इस कलयुगी युग में चोरी करने के लिए अंधेरं की आवश्यकता नहीं है बल्कि

आज समाज के सम्माननीय सदस्य दिन के उजाले में जनता की खून-पसीने की मेहनत की कमाई को दिन के उजाले में ही डकार जाते हैं।

अफसर एक ही काम के लिए पैसों की वसूली आदमी की हैसियत के हिसाब से करते हैं। जो उन्हें थोड़ा गरीब लगता है उसका काम वो कम पैसे में कर देते हैं और जो पैसे वाला दिखता है उससे मोटी रकम वसूल कर उसका काम निपटाते हैं-''यों सड़कछाप अधिकारी भी सरकार में हैं। उनकी उगाही की मानसिकता लचीली है। वह न्यायप्रिय प्रवृत्ति के हैं। पहले खिलाने वाले की क्षमता को आँकते हैं। उसी के हिसाब से खाते हैं। ऐसों के लिए काम की एवज में खाना, उसूल का मसला है। वह उसूलन खाते हैं, इसलिए कभी-कभार रियायत भले कर दें, पर खाने का हक नहीं छोड़ते हैं''[70] अर्थात् कमीशन खाना हर अधिकारी का उसूल बन गया है कभी किसी से कम कभी ज्यादा पर ये कमीशन लिए बगैर कुछ नहीं करते हैं।

बिजली का बिल कम आए इसके लिए लोग कैसे अधिकारी को घूस देते है इस पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहते हैं-''ऐसा सब ऊलजलूल, घूस के बल मुमकिन है। हमारे मित्र के घर, गरमियों में ए.सी. चलता है जाड़ों में गीजर और हीटर, पर उनकी बिजली का खर्च अपने दो पंखों और चार लट्टू के बिल से कम आता है। हमारे ताज्जुब जताने पर वह खुफिया अंदाज में हमारे कान में फुसफुसाते हैं-सब ठीक हो जाएगा बस इलाके के एस.डी.ओ. से एकमुश्त नकदी का सौदा कर लो या फिर मंथली रेट का।''[71] इस प्रकार घर के बिजली के बिल को कम कराने के लिए भी घूसखोरी है।

इसी प्रकार किसी बड़े खेल का आयोजन हो या किसी अन्य कार्य के लिए आयोजन स्थल की व्यवस्था करनी हो नेता, मंत्री, ठेकेदार, अधिकारी इसमें सबका अपना अलग-अलग कमीशन फिक्स होता है। कामनवेल्थ गेम में प्रतियोगिता के आयोजन में हुए घोटाले पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहते

हैं-''कॉमनवेल्थ के आयोजन में खेल भावना से आयोजक पैसा खाते हैं । जब उनका नाम ही कॉमन-वैल्थ है तो अपने श्रम-परिश्रम के एवज में उस वैल्थ से अपना हिस्सा वसूलना उनका मौरूसी हक है।''[72]

सरकारी कर्मचारी होने के बहुत से फायदे होते हैं। एक ही काम के वो चाहे कितने पैसे वसूल सकता है। इसके लिए न कोई कानून है और न ही कोई ताकत जो उसे रोक सके। बाबुओं से काम करवाना है तो भेंट तो चढ़ाना ही होगा-''आपने तो बाबूजी के साथ काम किया है वह तो कहते थे कि सरकार और भगवान में एक ही समानता है। दोनों को प्रसाद चढ़ाना पड़ता हैं। कभी पटते हैं कभी नहीं।[73] अर्थात् चढ़ावा चढ़ाना तो काम करवाने के लिए बहुत जरूरी है। लेकिन यह गारण्टी नहीं है कि चढ़ावा चढ़ाने के बाद काम हो ही जाएगा।

आजादी के समय नेहरू जी ने नारा दिया था आराम हराम हैं आम आदमी के लिए महँगाई का बढ़ना, सरकारी दफ्तरों में फैला हुआ भ्रष्टाचार वाकई में आराम को हराम कर रहा है। सुभाष चंद्र ने आजादी के बदले खून माँगा था किंतु आधुनिक सरकारी कर्मचारी अपनी मेज से फाइल को सरकाने के लिए घूस की माँग करते हैं-''अपनी अहिंसक प्रवृत्ति से विवश बाबू खून की जगह घूस का पक्षधर है और चूंकि मुल्क आजाद हो चुका है इसलिए घूस के बदले संबंद्ध फाइल को अपनी मेज की कारा से मुक्त कर सकता है। भैंस दूसरों के ठेलने पर अपने ठौर से हिलती है, बाबू की कलम सिर्फ घूस की प्रेरणा से चलती है।[74] अतः यदि प्रशासन में कोई काम कराना हो तो नोटों को साथ में अवश्य रखे। बिन नोट दिए प्रशासन में कोई भी काम संभव नहीं है।

इतना ही प्रशासन में प्रमोशन और तबादले दोनों के लिए ही नोटों का चढ़ावा चढ़ाना पड़ता है गोपाल जी ने इसे बड़े अनोखे अंदाज में बयां किया है-''सिद्धेश्वरी देवी ने प्रमोशन तो करवा दिया। क्या तबादला चाहते हो? कैश काउंटर पर पाँच लाख जमा करो। इच्छित तीन स्थानों के नाम लिखो। एक माह में मनोकामना पूरी होगी।

प्रमोशन का कितना चढ़ावा है? हमने जानना चाहा, उसने बताया-'दस लाख'। हम उलटे पाँव लौट आए। अपनी अक्ल में आ गया। यह सिद्धेश्वरी का नहीं भ्रष्टेश्वरी देवी का पूजाघर है।''[75]

यहाँ पर अफसर बाबू ही नहीं बल्कि कार्यालय में चपरासी भी रिश्वत लेने से पीछे नहीं रहता। उसे जब जहाँ मौका मिला अपनी चाय-पानी का खर्चा निकाल ही लेता है-''साहब से मिलना है क्या? दस रुपया लगेगा'' उन्होंने घोषणा की। हमने इनकार में सिर हिलाया।

''यह सरकार का दफ्तर है म्यूनिस्पैलिटी का 'पारक' नहीं जो टहलते चले आए'' उन्होंने हमें खदेड़ा''[76]

इस प्रकार गोपाल जी अपने व्यंग्यों के माध्यम से आम जनता को सचेत करना चाहते हैं कि किसी भी सरकारी दफ्तर में जाने के लिए उसकी जेब का नोटों से भरा होना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि अपने काम को करवाने के लिए उसे हर कदम पर सरकारी कर्मचारियों को चढ़ावा चढ़ाना होगा। प्रशासन में घूसखोरी, रिश्वत का खेल बड़ा ही अनोखा है कहीं पर सरकार औपचारिक रूप से कर के नाम पर पैसे वसूलती है और कहीं पर उसी सरकार के कारिन्दे कार्य सिद्धि के लिए अनौपचारिक रूप से पैसे की वसूली करते हैं। दोनों ही सूरतों में आम जनता को इससे रूबरू होना पड़ता है। गोपाल जी ने सरकार एवं प्रशासन में चल रही इस घूसखोरी का भंडाफोड़ अपने व्यंग्यों में बड़ी सूक्ष्म दृष्टि के साथ किया है।

4.2.4 दफ्तरशाही

आज के युग में 'दफ्तर' ऐसा शब्द है जो आराम करने का केंद्र स्थल है। यहाँ काम के अतिरिक्त सभी कार्य होते हैं। मसलन पान खाना, समोसे खाना, घूमना फिरना इत्यादि। वैसे तो सरकारी दफ्तरों का खुलने का समय सुबह 10 बजे का है, पर यदि कोई व्यक्ति अपने काम के लिए 10 बजे दफ्तर में पहुँच गया तो माहौल कुछ इस प्रकार का रहता है-''मुझे लगा कि बिहार के बुद्धिजीवियों पर बुद्ध का बकायदा

प्रभाव है। वह अपना सिद्धांत समझाने मुझे पटना के एक सरकारी दफ्तर में ले गए। इस बजने के काफी बाद कार्यालय खाली पड़ा था। बस कुछ चूहे मेजों पर मटरगश्ती कर रहे थे और कबूतर छत पर गुटरगूँ।''[78] अर्थात् दफ्तर खुलने का समय तो दस बजे का है। किंतु कर्मचारियों का आना जाना 12 बजे तक होता है। इतना ही नहीं दोपहर के तीन बजे तक यह दफ्तर खाली भी हो जाते हैं मतलब आज के कर्मचारी इतने कार्य कुशल हैं कि सात घंटे का काम वो चार से पाँच घंटे में ही निपटा देते है। दफ्तर संस्कृति में जो काम टालने की प्रवृत्ति होती है उसका चित्रण गोपाल चतुर्वेदी ने बहुत ही सुंदर ढ़ग से इन पंक्तियों में किया है-

''मेरी अरथी के संग रखना,

चंद फाइलें कुछ हाला

राम नाम का जाप न करना

जपना सर सर माला

मेरी अस्थि विसर्जित करके

दफ्तर में लिखवा देना

जब तक संभव था

जीवन में इसने हर निर्णय टाला।''[79]

दफ्तर के अंदर प्रवेश करते ही चारों ओर 'सर' का स्वर गूँजता नजर आता है। अफसर का अपना अलग ही रौब रूतबा रहता है किंतु रिटायर होने पर उसी अफसर की पूँछ अपने ही ऑफिस में नहीं होती है-"आप किसी भी दफ्तर मे जाएं तो साहब के कमरे के सामने बैठा ऊँघता द्वारपाल आपको देखकर गुर्राता है पर किसी भी सर के नजर आते ही दुम हिलाने लगता है।..... वो समय के साथ साहब भी बदल जाता है। वही सर्वशक्तिमान व्यक्ति जो दफ्तर के जंगल में भूखे शेर की तरह दहाड़ता है, रिटायर होकर बिना 'सर' की स्वास्थ्यवर्धक खुराक कके भीगी बिल्ली बना अपने दिन गिनने लगता है।''[80] अर्थात् दफ्तर में कुर्सी का बड़ा ही महत्त्व है जब तक व्यक्ति कुर्सी पर विराजमान है 'सर' 'सर' कहकर सभी उसका सम्मान करते हैं और कुर्सी से हटते ही यानी रिटायर होते ही लोग उसे पहचानते तक नहीं हैं।

इस प्रकार प्रशासन का हर कदम पर भ्रष्टाचार फैला हुआ है। कहीं कर्मचारी सरकारी दफ्तरों से बिना काम किए वेतन लेते हैं। तो कहीं पर काम करने के लिए रिश्वत दफ्तर में लोग काम कम करते है और कैण्टीन का प्रयोग अधिक। इस प्रकार दफ्तर में फैली असंगतियों का गोपाल जी ने अपने व्यंग्य में उजागर किया है। एक प्रशासनिक अधिकारी के तौर पर उन्होंने प्रशासन और दफ्तर में फैली सूक्ष्म से सूक्ष्म विसंगतियों एवं विषमताओं को देखा और समझा और पाठकों को इससे अवगत कराने का पूर्ण प्रयास किया है। प्रशासन संबंधी इनके व्यंग्य जहाँ एक ओर गुदगुदाते एवं हँसाते है वहीं दूसरी ओर मीठी चोट भी करते हैं।

संदर्भ-सूची :

1. कन्हैया लाल नंदन, गोपाल चतुर्वेदी की शान में एक गुस्ताखी, व्यंग्य यात्रा पत्रिका, संपादकः 73, साक्षर अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली, 110063, अंकः 12-13, जुलाई-दिसम्बरः 2007, पृ.-48.

2. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के नकटे, सं. 2014, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, पृ.-95.

3. शरद जोशी, जीप पर सवार झल्लियाँ, सं. 1990, राजकमल प्रकाशन, 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पृ.-25.

4. गोपाल चतुर्वेदी, जमीन से जुड़े इंसान और नेता, साहित्य अमृत, संपा. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-2, जनवरी 2015, पृ.-36.

5. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं. 2010, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., एक्स 30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली-110020, पृ. 32.

6. अमृत राय, बतरस, सं. 2013, साहित्य अकादमी, 35, रवींद्र भवन, फिरोजशाह रोड, नई नई दिल्ली-110001, पृ.-20.

7. गोपाल चतुर्वेदी, निर्लज्ज समय के आस पास, सं. 2012, मेधा बुक्स, एक्स-11, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032, पृ.-37.

8. रवींद्रनाथ त्यागी, मेरी शोक सभा, सं. 2009, हिंदी बुक सेंटर, 4/5 बी, आसफ अली रोड, नियर डिलाइट सिनेमा, नई दिल्ली-2, पृ.-50.

9. गोपाल चतुर्वेदी, कुरसीपुर के कबीर, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली -110006, पृ.-152.

10. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सं. 2002, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, पृ.-158.

11. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं. 2010, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., एक्स 30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली-110020, पृ. 55.

12. गोपाल चतुर्वेदी, राम झरोखे बैठ के, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली -110006, पृ.-105.

13. हरिशंकर परसाई, विकलांग श्रद्धा का दौर, सं. 2015, राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृ. 23-24.

14. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सं. 2002, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, पृ.-107.

15. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, सं. 2011, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृ.-15.

16. गोपाल चतुर्वेदी, आजाद भारत के कालू, सं. 1993, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ.-158.

17. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सं. 2002, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, पृ.-105.

18. गोपाल चतुर्वेदी, गंगा से गटर तक, सं. 1997, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली -110006, पृ.-129.

19. गोपाल चतुर्वेदी, आजाद भारत के कालू, सं. 1993, , प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ.-161

20 गोपाल चतुर्वेदी, धाँधलेश्वर, सं. 2008, भारतीय ज्ञानपीठ, 181 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, पृ.-78.

21. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के नकटे, सं. 2014, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, पृ.-107.

22. गोपाल चतुर्वेदी, निर्लज्ज समय के आस पास, सं. 2012, मेधा बुक्स, एक्स-11, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032, पृ.-39.

23. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं. 2010, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., एक्स 30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली-110020, पृ. 41-42.

24. वही, पृ.-175.

25. गोपाल चतुर्वेदी, खंभों के खेल, सं. 2002, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड़, नई दिल्ली, पृ.-163.

26. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सं. 2002, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, पृ.-144.

27. संपा. काका हाथरसी तथा गिरिराज शरण अग्रवाल, सं. 1993, श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य निबंध, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ. 62-63.

28. गोपाल चतुर्वेदी, दुम की वापसी, सं. 2002, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड़, नई दिल्ली, पृ.-80.

29. गोपाल चतुर्वेदी, अफसर की मौत, सं. 2002, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड़, नई दिल्ली, पृ.-36.

30. गोपाल चतुर्वेदी, निर्लज्ज समय के आस पास, सं. 2012, मेधा बुक्स, एक्स-11, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032, पृ.-195.

31. गोपाल चतुर्वेदी, आजाद भारत के कालू, सं. 1993, , प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ.-91.

32. गोपाल चतुर्वेदी, राम झरोखे बैठ के, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार,

दिल्ली -110006, पृ.-89.

33. शरद जोशी, प्रतिदिन (दो), सं. 2005, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 40.

34. बनारसीलाल चतुर्वेदी, चैबे जी की डायरी, सं. 1989, श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य निबंध, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ.-124.

35. गोपाल चतुर्वेदी, दुम की वापसी, सं. 2002, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड़, नई दिल्ली, पृ. 102-103.

36. हरिशंकर परसाई, रानी नागफनी की कहानी, सं. 1962, राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृ.-119.

37. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं. 2010, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., एक्स 30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली-110020, पृ.-51.

38. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं. 2010, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., एक्स 30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली-110020, पृ.-57.

39. वही, पृ.-57.

40. बनारसीलाल चतुर्वेदी, चैबे जी की डायरी, सं. 1989, श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य निबंध, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ.-4.

41. गोपाल चतुर्वेदी, राम झरोखे बैठ के, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार,

दिल्ली -110006, पृ.-157.

42. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सं. 2002, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, पृ.-202.

43. हरिशंकर परसाई, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, सं. 2000, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.-37.

44. लतीफ घोंघी, संकटलाल जिंदाबाद, सं. 2010, हिंदी बुक सेंटर, 4/5 बी, आसफ अली रोड, नियर डिलाइट सिनेमा, नई दिल्ली-2, पृ.-43.

45. संपा. कमल किशोर गोयंका, रवींद्रनाथ त्यागी, सं. 1987, प्रतिनिधि रचनाएं, पराग प्रकाशन, आई-2/16, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-2, पृ.-149.

46. गोपाल चतुर्वेदी, धाँधलेश्वर, सं. 2008, भारतीय ज्ञानपीठ, 181 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, पृ.-61.

47. गोपाल चतुर्वेदी, आजाद भारत के कालू, सं. 1993, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ.-110.

48. कन्हैयालाल नंदन गोपाल चतुर्वेदी की शान में एक गुस्ताखी, व्यंग्य यात्रा पत्रिका, संपा. प्रेमजनमेजय, 73 साक्षर अपार्टमेंटस, ए-3 पश्चिम विहार, नई दिल्ली 63, जुलाई-दिसम्बर 2007 अंक.

49. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के नकटे, सं. 2014, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, पृ.-152.

50. वही, पृ.-104.

51. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं. 2010, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., एक्स 30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली-110020, पृ.-96.

52. वही, पृ. 96-97.

53. गोपाल चतुर्वेदी, आदमी और गिद्ध, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली -110006, पृ.-62.

54. गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढ़ि-पढ़ि, सं. 2008, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, पृ. 88-89.

55. गोपाल चतुर्वेदी, अफसर की मौत, सं. 2002, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड़, नई दिल्ली, पृ.-54.

56. गोपाल चतुर्वेदी, आदमी और गिद्ध, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली -110006, पृ.-118.

57. संपा. कमला प्रसाद, प्रकाश दुबे, हरिशंकर परसाई, चुनी हुई रचनाएं, भाग दो, सं. 2013

वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, पृ.-128.

58. गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढ़ि-पढ़ि, सं. 2008, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, पृ. 10-11.

59. वही, पृ.-75.

60. वही, पृ.-47.

61. वही, पृ.-155.

62. गोपाल चतुर्वेदी, अफसर की मौत, सं. 2002, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड़, नई दिल्ली, पृ.-69.

63. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं. 2010, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., एक्स 30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली-110020, पृ. 69-70.

64. गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढ़ि-पढ़ि, सं. 2008, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, पृ.-66.

65. गोपाल चतुर्वेदी, कुरसीपुर के कबीर, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली -110006, पृ. 52-53

66. गोपाल चतुर्वेदी, आदमी और गिद्ध, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली -110006, पृ.-62.

67. वही, पृ.-58.

68. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के नकटे, सं. 2014, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, पृ.- 39.

69. वही, पृ.-41.

70. वही, पृ. 50-51.

71. वही, पृ.-67.

72. वही, पृ.-83.

73. वही, पृ.-129.

74. वही, पृ.-151.

75. गोपाल चतुर्वेदी, देश में नए पूजाघर, साहित्य अमृत, संपा. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-2, दिसंबर 2011, पृ.-39.

76. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, सं. 2011, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृ.-151.

77. गोपाल चतुर्वेदी, कुरसीपुर के कबीर, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली -110006, पृ. 91.

78. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, सं. 2011, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज,

नई दिल्ली-110002, पृ.-34.

79. व्यंग्य यात्रा, संपा. प्रेमजनमेजय, बातचीत, 73, साक्षर अपार्टमेंटस, ए-3 पश्चिम बिहार नई दिल्ली-63, जुलाई-दिसम्बर 2007, अंक 12-13, पृ.-38.

80. गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढ़ि-पढ़ि, सं. 2008, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, पृ.-93.